संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

मूल्य : रु. ६/-
अंक : १९६
अप्रैल २००९

हिन्दी

भगवत्पाद श्री श्री लीलाशाहजी
महाराज अवतरण-दिवस : २२ मार्च

श्री हनुमानजी
अवतरण-दिवस : ९ अप्रैल

देवर्षि नारदजी
अवतरण-दिवस : १० मई
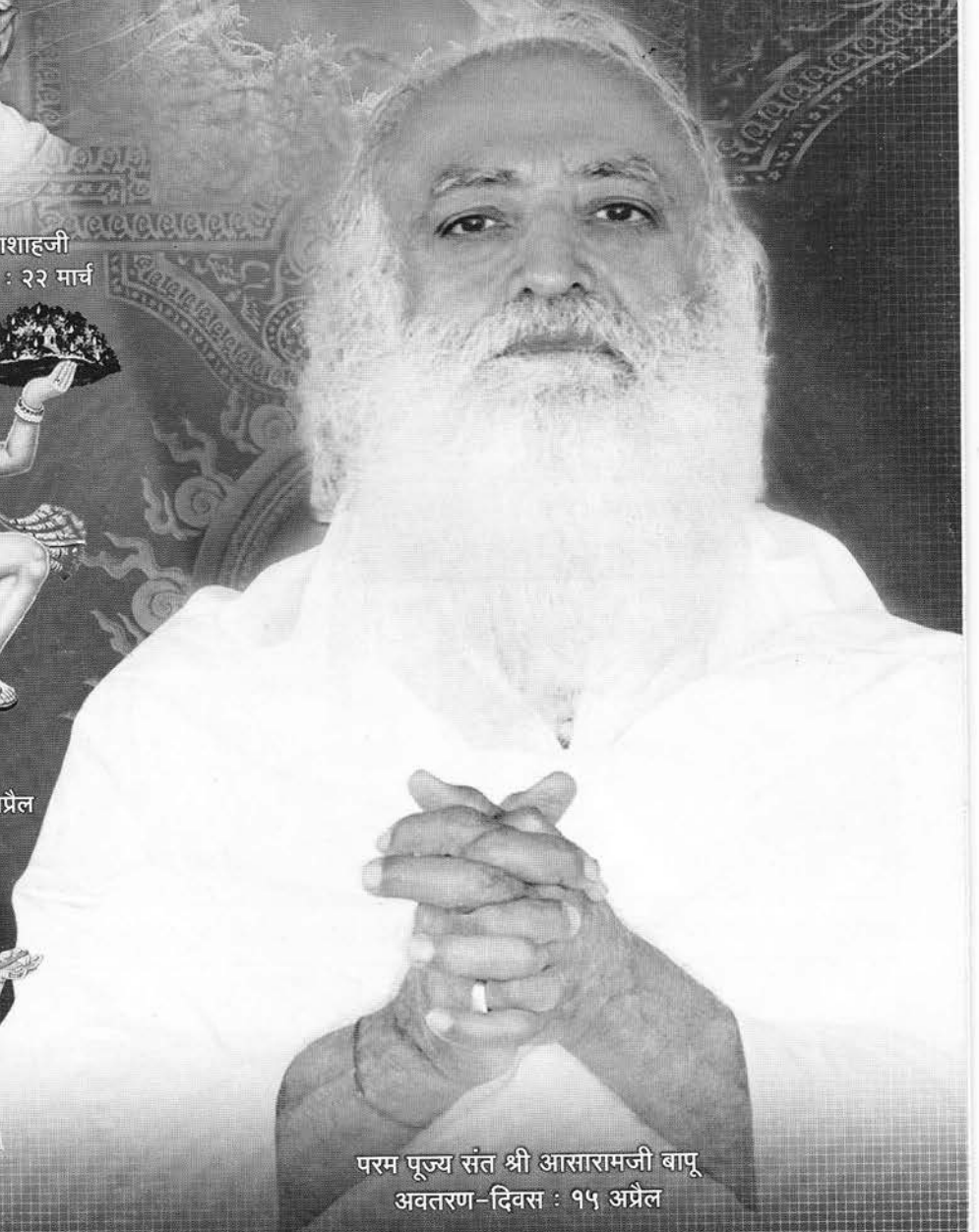
परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू
अवतरण-दिवस : १५ अप्रैल

करुणासिंधु आत्मा-परमात्मा लोक-मांगल्य के लिए साकार होकर ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों व अवतारों के रूप में जिस संस्कृति में समय-समय पर प्रकट होते रहते हैं, वह भारतीय संस्कृति धन्य है !

कलियाँ महकें बनके फूल, संस्कार बनते जीवन का मूल ।

बिठुर, जि. कानपुर (उ.प्र.) तथा भिवाड़ी, जि. अलवर (राज.) में योग-प्रशिक्षण ।

लासलगाँव, जि. नासिक (महा.) में 'विद्यार्थी उज्ज्वल भविष्य निर्माण शिविर' का आयोजन तथा हटा, जि. दमोह (म.प्र.) में 'दिव्य प्रेरणा-प्रकाश ज्ञान प्रतियोगिता' प्रमाणपत्र-वितरण ।
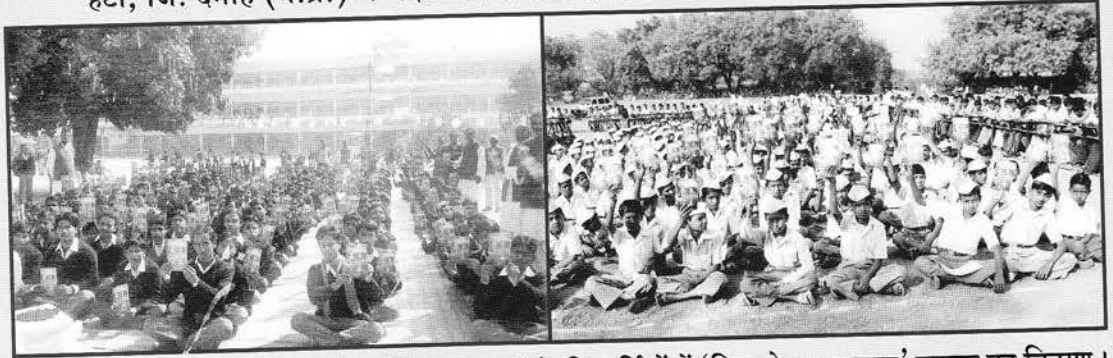
फतेहपुर (उ.प्र.) तथा दोंडाईचा, जि. धुलिया (महा.) के विद्यार्थियों में 'दिव्य प्रेरणा-प्रकाश' पुस्तक का वितरण ।

पिंपलगाँव, जि. नासिक (महा.) के कन्या विद्यालय में 'युवाधन सुरक्षा' तथा रायचुर (कर्नाटक) के विद्यार्थियों में 'बाल संस्कार' पुस्तक का वितरण ।

ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

हिन्दी, गुजराती, मराठी, उड़िया, तेलगू, कन्नड़ व अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित

वर्ष : १९	अंक : १९६
अप्रैल २००९	मूल्य : रु. ६-००
चैत्र-वैशाख	वि.सं.२०६६

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २२५/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US $ 20
(२) द्विवार्षिक	: US $ 40
(३) पंचवार्षिक	: US $ 80

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	द्विवार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	७०	१३५	३[illegible]
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 40	US $ 80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें । इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी । अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट (अमदावाद में देय) द्वारा ही भेजने की कृपा करें ।

संपर्क पता : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, मोटेरा, अहमदाबाद, पो. साबरमती-३८०००५ (गुजरात) ।

ऋषि प्रसाद से संबंधित कार्य के लिए फोन नं. : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.

अन्य जानकारी हेतु : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.

e-mail : ashramindia@ashram.org

web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम

प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी

प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, मोटेरा, अहमदाबाद, पो. साबरमती-३८०००५. गुजरात

मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, ''सुदर्शन'', मिठाखली अंडरब्रीज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद- ३८९०००९. (गुजरात)

सम्पादक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी

सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा, श्रीनिवास

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रमणिका

विभिन्न टीवी चैनलों पर पूज्य बापूजी का सत्संग

संस्कार		
रोज सुबह ७-५० बजे (सोम से शुक्र)	रोज सुबह ६.१० बजे	रोज सुबह ७-०० बजे

कल्याणकारी छः बातें

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

परमात्मदेव का ज्ञान, परमात्मदेव की प्रीति, परमात्मदेव में विश्रांति मिले ऐसे कर्म, ऐसा चिंतन, ऐसा संग, ऐसे शास्त्रों का अध्ययन करना, ऐसा भाव बनाना पुरुषार्थ है और इसके विपरीत करना प्रमाद है । प्रमाद मौत की खाई में गिराता है । बार-बार जन्मो, बार-बार मरो, बार-बार माँ की कोख में फँसो... इस प्रकार न जाने कितने जन्म बीत गये, कितने माँ-बाप, कितने मित्र, कुटुम्बी छोड़के आये हो । तो अब यह जीवन विफल न हो इसलिए इन छः बातों को याद रखें :

(१) अपना लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए ।

(२) अपने जीवन में उत्साह बना रहे ।

(३) भगवान में, अपने-आपमें श्रद्धा बनी रहे ।

(४) किस पर भरोसा करें, किस पर नहीं ? सावधान रहें ।

(५) जीवन में धर्म होना चाहिए ।

(६) अपनी अंतिम यात्रा कैसी हो ?

एक तो अपने लक्ष्य का निश्चय कर लें, अपना लक्ष्य ऊँचा बना लें । दो प्रकार के लक्ष्य होते हैं - एक होता है वास्तविक लक्ष्य, दूसरा होता है अवांतर लक्ष्य । परम सुख, परम ज्ञान, परम मुक्त अवस्था को पाना, आत्मा-परमात्मा का ज्ञान पाना यह वास्तविक लक्ष्य है । खाना-पीना, कमाना और इनके सहायक कर्म यह अवांतर लक्ष्य है । किसीसे पूछा जाय कि 'आपके जीवन का उद्देश्य क्या है ?' तो बोलेंगे : 'मैं वकील बनूँ, मैं सेठ बनूँ...' नहीं, यह जीवन का वास्तविक उद्देश्य नहीं है, जीवन का वास्तविक उद्देश्य है शाश्वत सुख पाना और उसके सहायक सब कर्म साधन हैं ।

कुछ लोग लक्ष्य बना लेते हैं, 'मैं डॉक्टर बनूँगा ।' डॉक्टर बन गया बस । यह क्या लक्ष्य है ! यह तो मजूरी है । यदि तुमने वकील बनने का लक्ष्य बना लिया तो यह तो अवांतर लक्ष्य है बेटे ! मुख्य लक्ष्य है अपने आत्मा-परमात्मा को पाकर सदा के लिए दुःखों, कष्टों, चिंताओं से मुक्त हो जाना । फिर भी शरीर रहेगा तब तक ये दुःख, कष्ट आयेंगे लेकिन आप तक नहीं पहुँचेंगे, आप अपने पृथक् परमेश्वर स्वभाव में, अमर पद में प्रतिष्ठित रहोगे । तो ऐसे लक्ष्य का निश्चय कर लो ।

दूसरी बात है मन में उत्साह बना रहे । उत्साह का मतलब है सफलता, उन्नति, लाभ और आदर के समय चित्त में काम करने का जैसा जोश, तत्परता, बल बना रहता है, ठीक ऐसा ही प्रतिकूल परिस्थिति में भी बना रहे । जिसका उत्साह टूटा, मानो उसका जीवन विफल हो गया । उत्साहहीन जीवन व्यर्थ है ।

उत्साहसमन्वितः... कर्ता सात्त्विक उच्यते ।

'उत्साह से युक्त कर्ता सात्त्विक कहा जाता है ।'

(भगवद्गीता : १८.२६)

जो काम करें उत्साह से करें, तत्परता से करें; लापरवाही न बरतें । उत्साह से काम करने से योग्यता बढ़ती है, आनंद आता है । उत्साहहीन होकर काम करने से कार्य बोझ बन जाता है ।

उत्साह बिनु जो कार्य हो, पूरा कभी होता नहीं ।
उत्साह होता है जहाँ, होती सफलता है वहीं ।

उत्साह न छोड़ें और लापरवाही न करें;

जीवन में धैर्य रखें ।

तीसरी बात है ईश्वर पर और अपने पर भरोसा रखें । ऊँचे लोगों पर भरोसा रखें । ऊँचे-में-ऊँचे हैं परमात्मा, जो परमात्मा के नाते जीवनयापन करते हैं ऐसे लोगों की बातों पर दृढ़ विश्वास रखें ।

चौथी बात है किस पर कितना विश्वास रखें, किस पर न रखें ? कर्म करने में, विचार करने मे, संग करने में, विश्वास करने मे सावधान रहें । किसकी बात पर विश्वास करें ? जो स्वार्थी हैं, द्वेषी हैं, निंदक हैं, कृतघ्न हैं, बेईमान हैं उनकी बातों पर विश्वास करें कि जो भगवान के रास्ते चल रहे हैं, भगवत्सुख में हैं, भगवद्ज्ञान में हैं, 'बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय' जिनका जीवन है उनकी बातों पर ? किसका संग करना चाहिए और किसके संग से बचना चाहिए ? जो बहिर्मुख हैं, झगड़ालू हैं, विषय-विकारों में पड़ रहे हैं, निंदक हैं उनसे बचें । जो अपने सजातीय हैं अर्थात् भगवान के रास्ते हैं, प्रीति में हैं, ज्ञान में हैं उनका संग करें, उनकी बातों मे श्रद्धा करें । श्रद्धावान के संग से श्रद्धा निखरती है, साधक के संग से साधना निखरती है और शराबी के संग से शराबीपना आता है, जुआरी के संग से जुआरीपना आता है तो हमको क्या चाहिए उसी प्रकार का ऊँचा संग करें ।

'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' में वसिष्ठजी महाराज कहते हैं कि अच्छा संग करना चाहिए, अपने अंतःकरण का शोधन हो ऐसा संग करना चाहिए, सत्शास्त्रों का आश्रय लेना चाहिए । संतजनों का संग करके संसार-सागर से तरने का उपाय करना चाहिए अर्थात् आसुरी वृत्तियों से बचना चाहिए । जो हमारा समय, शक्ति, बुद्धि, जीवन खराब कर दें ऐसे संग से, ऐसे भोगों से, ऐसे चिंतन से, ऐसे साहित्य से बचकर श्रेष्ठ साहित्य, श्रेष्ठ संग, श्रेष्ठ चिंतन और श्रेष्ठ-में-श्रेष्ठ परमात्मा की बार-बार स्मृति करके उसमें गोता मारने का अभ्यास कर दो तो अंत में जीवन भगवान से मिलानेवाला हो जायेगा ।

पाँचवीं बात है जीवन में धर्म का नियंत्रण हो । जीवन में धर्म का नियंत्रण होगा तो अनुचित कार्यों पर रोक लग जायेगी और उचित होने लगेगा, अनुचित में समय-शक्ति बर्बाद नहीं होगी । आप अनुचित नहीं करते तो लोग आपको बदनाम करने की साजिशें रचकर आपकी निंदा करवाते हों फिर भी आपके अंतःकरण में खलबली नहीं मचेगी । आपके जीवन में धर्म है, आपके जीवन में परोपकार है, आपकी बुद्धि भगवत्प्रसादजा है तो आपका कुप्रचार करनेवाले थक जायें, फिर भी आपका बाल बाँका नहीं होगा । जीवन में धर्म का फल है कि हर परिस्थिति में हम सम रहें । जैसे धर्मराज युधिष्ठिर को दुर्योधन ने कितना कष्ट दिया लेकिन धर्मराज का बाल बाँका नहीं हुआ ।

छठी बात है अपनी अंतिम यात्रा कैसी हो ? आखिर में कैसे मरना है यह याद रहे, मरना तो पड़ेगा ही । चिंता लेकर मरना है, तड़पते हुए मरना है, अधूरा काम छोड़कर मरना है, कुछ पाते-पाते या छोड़ते-छोड़ते मरना है, भय लेकर मरना है अथवा वासना के जाल में छटपटाते हुए मरकर बाद में कई जन्मों में भटकना पड़े ऐसे मरना है ? नहीं ! निश्चिंत होकर, पूर्णकाम होकर, आप्तकाम होकर मरना है । कोई इच्छा, कोई वासना न रहे, हमारे जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो जाय बस ।

पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान ।...

तो वैसा अभ्यास और वैसी यात्रा रोज करते रहना चाहिए । इससे जीवन निर्भार रहेगा, निर्दुःख रहेगा । इस जीवन को अपने पूर्ण तत्त्व का अनुभव करनेवाला जीवन बनाना चाहिए । ❑

दिव्य दृष्टि

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

भगवान श्रीरामचन्द्रजी अरण्य में विश्राम कर रहे थे और लखन भैया तीर-कमान लेकर चौकी कर रहे थे। निषादराज ने श्रीरामजी की यह स्थिति देखकर कैकेयी को कोसना शुरू किया : ''यह कैकेयी, इसे जरा भी खयाल नहीं आया ! सुख के दिवस थे प्रभुजी के और धरती पर शयन कर रहे हैं ! राजाधिराज महाराज दशरथनंदन राजदरबार में बैठते। पूर्ण यौवन, पूर्ण सौंदर्य, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रेम, पूर्ण प्रकाश, पूर्ण जीवन के धनी श्रीरामजी को धकेल दिया जंगल में, कैकेयी की कैसी कुमति हो गयी !''

लखन भैया के सामने कैकेयी को उसने कोसा। निषादराज ने सोचा कि 'लक्ष्मणजी मेरी व्यथा को समझेंगे और वे भी कैकेयी को कोसेंगे' लेकिन लखन लाला ऐन्द्रिक जीवन में बहनेवाले पाशवी जीवन से ऊँचे थे। वे मानवीय जीवन के सुख-दुःखों के थपेड़ों से भी कुछ ऊँचे उठे हुए थे। उन्होंने कहा : ''तुम कैकेयी मैया को क्यों कोसते हो ?

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता ।

कोई किसीको सुख-दुःख देनेवाला नहीं है ।''

जो बोलता है फलाने ने दुःख दिया, फलाने ने दुःख दिया, वह कुछ नहीं जानता है, अक्ल मारी हुई है उसकी । कुछ लोगों ने करोड़ों रुपये खर्च करके बापू का कुप्रचार कराया और यदि मैं बोलता कि 'इन्होंने कुप्रचार करके मुझे दुःखी किया, हाय ! दुःखी किया' तो मैं सचमुच 'दुःख-मेकर' (दुःख बनानेवाला) हो जाता । वे कुप्रचारवाले कुप्रचार करते रहे और हम अपनी मस्ती में रहे तो मेरे पास तो सत्संगियों की भीड़ और बढ़ गयी । यह नियति होगी ।

निषादराज बोलता है : ''यह अच्छा नहीं हुआ ।'' और लखन भैया कहते हैं कि ''कोई किसीके सुख-दुःख का दाता नहीं होता है, सबका अपना-अपना प्रारब्ध होता है, अपना-अपना सोच-विचार होता है, इसीसे लोग सुखी-दुःखी होते हैं । तुम कैकेयी अम्बा को मत कोसो ।''

निषादराज कहता है : ''क्या श्रीरामचन्द्रजी अपना कोई प्रारब्ध, अपने किसी पाप का फल भोग रहे हैं ? आपका क्या कहना है ?''

लक्ष्मणजी कहते हैं : ''श्रीरामजी दुःख नहीं भोग रहे हैं, दुःखी तो आप हो रहे हैं। श्रीरामजी तो जानते हैं कि यह नियति है, यह लीला है । सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीवन-मरण ये सब खिलवाड़ हैं, मैं शाश्वत तत्त्व हूँ और रोम-रोम में रम रहा हूँ, अनंत ब्रह्माण्डों में रम रहा हूँ । यह तो नरलीला करने के लिए यहाँ रामरूप से प्रकट हुआ हूँ । श्रीरामजी प्रारब्ध का फल नहीं भोग रहे हैं । श्रीरामजी तो गुणातीत हैं, देशातीत हैं, कालातीत हैं और प्रारब्ध से भी अतीत हैं । महापुरुष प्रारब्ध का फल नहीं भोगते, वे प्रारब्ध को बाधित कर देते हैं । प्रारब्ध होता है शरीर का, मुझे क्या प्रारब्ध ! यश-अपयश शरीर का होता है, बीमारी-तंदुरुस्ती शरीर को होती है, मेरा क्या ! हम हैं अपने-आप, हर परिस्थिति को जाननेवाले उसके बाप ! ऐसा तो सब ज्ञानवान जानते हैं फिर श्रीरामचन्द्रजी तो ज्ञानियों में शिरोमणि हैं । वे कहाँ दुःख भोग रहे हैं ! दुःख तो निषादराज आप बना रहे हैं ।''

अब ध्यान देना, इस कथा से आप कौन-सा नजरिया (दृष्टि) लेंगे ? कैकेयी कुटिल रही,

स्वार्थी रही और अपने बेटे के पक्ष में वरदान लिया, यह अनुचित किया– ऐसा समझकर आप अगर अनुचित से बचना चाहते हैं तो इस पक्ष को स्वीकार करके अपने अंतःकरण को गलतियों से, कुटिलता से बचा लें तो अच्छी बात है । अगर, कैकेयी में प्रेम था और रामजी के दैवी कार्य में कैकेयी ने त्याग और बलिदान का परिचय दिया है, इतनी निंदा सुनने के बाद भी, लोग क्या–क्या बोलेंगे, यह समझने के बाद भी कैकेयी ने यह किया है ऐसा आप मानते हैं तो कैकेयी के इस त्याग, प्रेम को याद करके अंतःकरण में सद्भाव को स्वीकार करिये । कैकेयी को कोसकर आप अपना दिल मत बिगाड़िये अथवा कैकेयी ने श्रीरामजी को वनवास दिया, अच्छा किया और हम भी ऐसा ही आचरण करें – ऐसा सोचकर अपने दिल में कुटिलता को मत लाइये । जिससे आपका दिल, दिलबर के ज्ञान से, दिलबर के प्रेम से, दिलबर की समता से, परम मधुरता से भरे, वही नजरिया आपके लिए ठीक रहेगा, सही रहेगा, बढ़िया रहेगा ।

कोई भाभी, कोई देवरानी, कोई जेठानी, कोई सास या बहू अनुचित करती है तो आप यह अनुचित है ऐसा समझकर अपने जीवन में उस अनुचित को न आने दें, तब तक तो ठीक है लेकिन 'यह अनुचित करती है, यह निगुरी ऐसी है, वैसी है...'– ऐसा करके आप उन पर दोषारोपण करके अपने दिल को बिगाड़ने की गलती करते हैं तो आप पशुता में चले जायेंगे । यदि सामनेवाली सास–बहू, देवरानी–जेठानी सहनशक्तिवाली है तो उसका सद्गुण लेकर आप समता लाइये । **किसीमें कोई सद्गुण है तो वह स्वीकारिये और किसीमें दुर्गुण है तो उससे अपनेको बचाइये । ऐसा करके आप अपने अंतःकरण का विकास कीजिये । न किसीका दोष देखिये और न किसीको दोषी मानकर आरोप करिये और न किसीकी आदत के गुलाम बनिये ।**

किसीके दोष देखकर आप मन में खटाई लायेंगे तो आपका अंतःकरण खराब होगा लेकिन दोष दिखने पर आप उन दोषों से बचेंगे और उसको भी निर्दोष बनाने हेतु सद्भावना करेंगे तो आप अपने अंतःकरण का निर्माण कर रहे हैं । संसार तो गुण–दोषों से भरा है, अच्छाई–बुराई से भरा है । आप किसीकी अच्छाई देखकर उत्साहित हो जाइये, आनंदित होइये और बुराई दिखने पर अपनेको उन बुराइयों से बचाकर अपने अंतःकरण का निर्माण करिये और गहराई में देखिये कि यही अच्छाई–बुराई के ताने–बाने संसार को चलाते हैं, वास्तव में तत्त्वस्वरूप भगवान सच्चिदानंद हैं, मैं उन्हींमें शांत हो रहा हूँ । जहाँ–जहाँ मन जाय, उसे घुमा–फिराकर छल, छिद्र, कपट से रहित, गुण–दोष के आकर्षण से रहित अपने भगवत्स्वभाव में विश्रांति दिलाइये, विवेक जगाइये कि 'मैं कौन हूँ ?', अपनेको ऐसा पूछकर शांत होते जाइये ।

आप पुरुषार्थ करके अपनी मति को ऐसा बनाइये कि आपको लगे कि भगवान पूर्णरूप से मेरे ही हैं । माँ के दस बेटे होते हैं, हर बेटे को माँ पूर्णरूप से अपनी लगती है, ऐसे ही भगवान हमको पूरे–के–पूरे अपने लगने चाहिए । ऐसा नहीं कि भगवान बापूजी के हैं, आपके नहीं हैं । जितने बापूजी के हैं उतने–के–उतने आपके हैं ।

'ऋग्वेद' कहता है : **मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वम् ।** 'तुम अपनी बुद्धि को तीक्ष्ण बनाओ और कर्म करो ।' **(१०.१०१.२)** और कर्म में ऐसी कुशलता लाओ कि कर्म तो हो लेकिन कर्म के फल की लोलुपता नहीं हो और कर्म में कर्तृत्व अभिमान भी नहीं हो । कर्म प्रारब्ध–प्रवाह से होता रहे और आप कर्म को कर्मयोग बनाकर नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्त करके भगवान में विश्राम पाओ, भगवान में प्रीति बढ़ाओ, ब्रह्मस्वभाव में जगो, ब्राह्मी स्थिति बनाओ । ❒

सर्वश्रेष्ठ व्रत

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

अकामात् च व्रतं सर्वं अक्रोधात् तीर्थसेवनम् ।

कामनारहित होने से सब व्रत सिद्ध हो जाते हैं व क्रोधरहित होने से सब तीर्थों का स्नान हो जाता है ।

जीव नहीं चाहता कि वह दुःखी हो । जीव नहीं चाहता वह जन्म-मरण के चक्र में पड़ता रहे । जीव नहीं चाहता कि माताओं के गर्भों में जाने की परम्परा चलती रहे, फिर भी वह बलात् पाप की तरफ, दुःख की तरफ क्यों प्रेरित हो जाता है ? जीव नहीं चाहता है कि वह क्रोधी हो, नहीं चाहता है कि वह कामी हो, नहीं चाहता है कि वह कर्मों के जाल को बढ़ाये, फिर भी क्यों गिरता है ? ऐसा प्रश्न अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से किया था । भगवान ने कहा :

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।।

'रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगों से कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषय में वैरी जान ।' (गीता : ३.३७)

कामना रजोगुण से पैदा होती है और उससे मनुष्य का ईश्वरदत्त जो विवेक है वह नष्ट हो जाता है । ईश्वरदत्त विवेक क्या है ? सत्य-असत्य, शाश्वत-नश्वर, स्थिर-अस्थिर... मतलब कि दुःखदायी क्या है और परम मंगलदायी क्या है, इसका विवेक जीव के पास है किंतु रजोगुण के कारण यह विवेक ढँक जाता है और जीव कामना करता है कि 'यह मिले, यह करूँ, इतना पाऊँ तो सुखी होऊँ...'

'यहाँ जाऊँ, यह खाऊँ...' - ऐसी कुछ परिस्थितियाँ बनाकर जीव सुखी होना चाहता है क्योंकि अपना जो सुखस्वरूप आत्मा है उसका ज्ञान ढक गया है । '**सत्त्वात् संजायते ज्ञानं...**' सत्त्वगुण बढ़ता है तो ज्ञान-प्रकाश होता है । रजोगुण जितना अधिक उतनी जीवन में आपाधापी और अंत में देखो तो हाथ कुछ लगता नहीं ।

इच्छाएँ बड़ी दुष्ट हैं । हम हैं तो आत्मा, शांतस्वरूप-ब्रह्मस्वरूप परंतु इच्छाओं ने हमको तुच्छ बना दिया, नीचे ला दिया । इच्छाएँ जितनी बढ़ती हैं, प्रगाढ़ होती हैं उतना ही हमारा चित्त मलिन होता है ।

सुख लेने की इच्छा होती है, वस्तुओं को सदा रखने की इच्छा होती है, धन को कमाने व बढ़ाने की इच्छा होती है । धन कमाओ, बढ़ाओ किंतु अंत में क्या ? यह अगर समझ में आ जाय तो इच्छाएँ कम हो जायेंगी । इच्छाएँ कम होते ही प्रारब्ध में जो होगा उसके अनुसार अच्छे ढंग से जीवन की गाड़ी चलेगी । लेकिन इच्छा करते-करते कुछ मिल जाता है तो उसमें आसक्ति हो जाती है व उसके चले जाने का भय होता है और यदि इच्छा पूरी नहीं होती तो क्रोध आता है । इस तरह मनुष्य आंतरिक शांति से, अपनी असलियत से दूर चला जाता है, गिर जाता है ।

इच्छा पूरी करने में मेहनत है और एक इच्छा पूरी हुई तो दूसरी इच्छा जरूर आयेगी परंतु इच्छा छोड़ने में मेहनत नहीं है, उसमें केवल विवेक चाहिए ।

मेरो चिंत्यो होत नहिं, हरि को चिंत्यो होय ।
हरि को चिंत्यो हरि करे, मैं रहूँ निश्चिंत ।।

आप केवल ७२ घंटे के लिए यह पक्का कर लो । आज तक इतनी सारी उम्र आपने दाँव पर लगा दी, कोई विशेष लाभ हुआ नहीं, उलटे परिश्रम

करना पड़ा और क्या हुआ ! पढ़े-लिखे, बेटे-बेटियों को पढ़ाया, यह किया-वह किया, आखिर क्या ? कुछ नहीं... गहराई में देखो तो आखिर कुछ नहीं, कोई सार नहीं । प्यारे ! अब आप गाँठ बाँध लो कि 'बस, तीन दिन तक कोई भी इच्छा आयेगी तो उसको हटा दूँगा । अगर वह (ईश्वर) बरसात करता है तो धन्यवाद !... धूप करता है तो धन्यवाद !... तीन दिन मैं अपनी इच्छा छोड़ूँगा और उसकी इच्छा में अपनी इच्छा मिलाऊँगा ।' केवल तीन दिन करके देखो, बस । कठपुतली हो जाओ तीन दिन के लिए । आप अलौकिकता के द्वार पहुँच जायेंगे, महात्मा होने लगेंगे ।

आप नहीं भी चाहते हैं तब भी जो होना होता है वह होता है पर 'नहीं-नहीं' करके जो होता है न, उसमें कष्ट होता है । किसी सेठ ने गायें पाली थीं । उन्हें चरानेवाला चरवाहा कहीं गया तो चरवाहे का लड़का गायों की सेवा करने आया । वह एक बछड़े को गौशाला में ले जाने का यत्न करने लगा पर बछड़ा चले ही नहीं । लड़का उसे घसीटता है, पीछे से पूँछ दबाता है तो कभी मारता है पर बछड़ा भी अपना जोर लगाता है, जाता नहीं है ।

अब असल में बछड़े को गौशाला में तो जाना है लेकिन चलता नहीं है तो मारते-मारते घसीटा जा रहा है । इतने में चरवाहा आया, बोला : ''तुझे अक्ल नहीं है । तू एम.ए. पढ़ा है परंतु बुद्धू है । बछड़ा कोई ऐसे आता है !''

लड़का बोला : ''आता नहीं है तो क्या करूँ ?''

चरवाहे ने बछड़े को छोड़ दिया और गौशाला में जाकर हरी घास दिखायी तो बछड़ा भागके वहाँ पहुँच गया ।

ऐसे ही मन को हरिरस का थोड़ा स्वाद दिला दो तो वह अपने-आप अंतर्मुख हो जायेगा, अपने-आप अंदर आ जायेगा । क्योंकि उसको अंदर आये बिना, आंतरिक यात्रा के बिना शांति नहीं मिलती । शांति के बिना सुख की संभावना नहीं है और सुख के बिना वास्तविक जीवन की संभावना नहीं है । जीवन और सुख दो नहीं हो सकते । हकीकत में हम लोगों ने बड़ी गलती कर दी है । हम लोग परिस्थितियों को जीवन मानते हैं । परिस्थितियाँ जीवन नहीं हैं । जैसे अमृत की पहचान यह है कि उसमें विष डालें तो अमृत हो जाय, ऐसे ही जीवन की यह पहचान है कि मौत भी आ जाय तो वह भी जीवन हो जाय । जीवन हमेशा एकरस होता है, परिस्थितियाँ बदलती हैं । स्थूल शरीर से होनेवाले शुभ-अशुभ कर्म, सूक्ष्म शरीर से होनेवाला शुभ-अशुभ चिंतन और कारण शरीर से मिलनेवाली यह शांति की स्थिति, अवस्था- ये सब शरीर के, माया के धर्म हैं । इन्हें हम अपने में मान बैठे हैं और अपने-आपका पता नहीं लगाते; फलतः मजदूरी कर-करके मर जाते हैं फिर भी अंत में हमारे कर्मों का बंधन बढ़ जाता है, घटता नहीं है । **(क्रमशः)** ❐

मिथ्या अभिमान

एक सेठजी महात्मा को अपनी विशाल कोठी और उद्यान स्वयं घूम-घूमकर दिखा रहे थे । उसके कला-कौशल और संग्रह में आत्मप्रशंसा भी करते जाते थे । बात-बात में उन्होंने कहा : ''एशिया में इस ढंग का स्थान और कोई नहीं है ।''

महात्मा ने वहीं पृथ्वी का नक्शा देखा । पूछा : ''क्या है ?''

''पृथ्वी ।''

''इसमें एशिया कहाँ है ?'' बतला दिया । फिर भारत, उसमें मुंबई बिंदु के रूप में । महात्मा ने पूछा : ''इसमें आपकी कोठी भी है ?''

सेठ बोले : ''नक्शे में कोठी नहीं दिखलायी जा सकती ।''

महात्मा बोले : ''फिर आपका अभिमान व्यर्थ है ।''

एक तमाचे की करामात

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

मुंबई के नजदीक गणेशपुरी है । गणेशपुरी, वज्रेश्वरी में नाना औलिया नाम के एक महापुरुष रहा करते थे । वे मुक्तानंदजी के आश्रम के नजदीक की सड़क पर मैले-कुचैले कपड़े पहने पड़े रहते थे अपने निजानंद की मस्ती में । वे दिखने में तो सादे-सूदे थे पर बड़ी ऊँची पहुँच के धनी थे ।

उस समय घोड़ागाड़ी चलती थी, ऑटो-रिक्शा गिने-गिनाये होते थे । एक बार एक डिप्टी कलेक्टर (उप-जिलाधीश) घोड़ागाड़ी पर कहीं जा रहा था । रास्ते में बीच सड़क पर नाना औलिया टाँग पर टाँग चढ़ाये बैठे थे ।

कलेक्टर ने गाड़ीवान को कहा : ''हार्न बजा, इस भिखारी को हटा दे ।''

गाड़ीवान बोला : ''नहीं, ये तो नाना बाबा हैं ! मैं इनको नहीं हटाऊँगा ।''

कलेक्टर : ''अरे ! क्यों नहीं हटायेगा ? सड़क क्या इसके बाप की है ?'' वह गाड़ी से उतरा और नाना बाबा को डाँटने लगा : ''तुम सड़क के बीच बैठे हो, तुमको अच्छा लगता है ? शर्म नहीं आती ?''

बाबा दिखने में दुबले-पतले थे लेकिन उनमें ऐसा जोश आया कि उठकर खड़े हुए और उस कलेक्टर का कान पकड़कर धड़ाक्-से एक तमाचा जड़ दिया । आस-पास के सभी लोग देख रहे थे कि नाना बाबा ने कलेक्टर को तमाचा मार दिया, अब तो पुलिस नाना बाबा का बहुत बुरा हाल करेगी ।

लेकिन ऐसा सुहावना हाल हुआ कि **'साधुनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ।'** की तरह **'साधुनां थप्पड़ं साधो सर्वसिद्धिकरं परं... महापातकनाशनं... परं विवेकं जागृतम् ।'** पंजा मार दिया तो उसके पाँचों विकारों का प्रभाव कम हो गया । कलेक्टर ने सिर नीचे करके दबी आवाज में गाड़ीवान को कहा : ''गाड़ी वापस लो ।'' जहाँ ऑडिट करने जा रहा था वहाँ न जाकर वापस गया अपने दफ्तर में और त्यागपत्र लिखा । सोचा, 'अब यह बंदों की गुलामी नहीं करनी है । संसार की चीजों को इकट्ठा कर-करके छोड़कर नहीं मरना है, अपने अमर आत्मा की जागृति करनी है । मैं आज से सरकारी नौकरी को सदा के लिए ठुकराता हूँ और अब असली खजाना पाने के लिए जीवन जीऊँगा ।' बन गये फकीर एक थप्पड़ से ।

कहाँ तो एक भोगी डिप्टी कलेक्टर और नानासाहब औलिया का तमाचा लगा तो ईश्वर के रास्ते चलकर बन गया सिद्धपुरुष !

तुम में से भी कोई चल पड़े ईश्वर के रास्ते, हो जाय सिद्धपुरुष ! नानासाहब ने एक ही थप्पड़ मारा और कलेक्टर ने अपना काम बना लिया । अब मैं क्या करूँ ? थप्पड़ से तुम्हारा काम होता हो तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ और कहानी-कथा सुनाने से तुम्हारा काम होता हो तो भी मैं तैयार हूँ लेकिन तुम अपना काम बनाने का इरादा कर लो । लग जाय तो एक वचन भी लग जाता है । ❑

किसीको गुरु के द्वार पहुँचाना यह ईश्वर के विभूतियोग में भागीदार होना है और किसीको ईश्वर के रास्ते से हटाना यह ईश्वर के माया-कोप में, नरक में जाने में भागीदार होना है ।

मन को वश करने के उपाय

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।

'मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है ।' **(मैत्रायण्युपनिषद् : ४.४)**

श्रीकृष्ण कहते हैं : 'जिसका मन वश में नहीं है उसके लिए योग करना अत्यंत कठिन है, यह मेरा मत है ।' **(गीता : ६.३६)**

मन को वश करने के, स्थिर करने के कई उपाय हैं, जैसे –

(१) प्रेमपूर्वक भगवन्नाम का कीर्तन करना : 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।' – वाणी से यह बोलते गये और मन में **'ॐ ॐ'** बोलते गये । ऐसा करने से मन एकाग्र होगा, रस आने लगेगा और वासनाएँ भी मिटने लगेंगी ।

मन–ही–मन भगवान के नाम का कीर्तन करो; वाणी से नहीं, कंठ से भी नहीं, केवल मन में कीर्तन करो तो भी मन एकाग्र होने लगेगा ।

(२) श्वासोच्छ्वास की गिनती द्वारा जप : जीभ तालू में लगाकर श्वासोच्छ्वास की गिनती करें । होंठ बंद हों, जीभ ऊपर नहीं नीचे नहीं बीच में ही रहे और श्वास अंदर जाय तो 'ॐ' बाहर आये तो एक, श्वास अंदर जाय तो 'शांति' बाहर आये तो दो... – इस प्रकार गिनती करने से थोड़े ही समय में मन लगेगा और भगवद्रस आने लगेगा; मन का छल, छिद्र, कपट, अशांति और फरियाद कम होने लगेगी । वासना क्षीण होने लगेगी । पूर्ण गुरु की कृपा हजम हो जाय, पूर्ण गुरु का ज्ञान अगर पा लें, पचा लें तो फिर तो **'सदा दिवाली संत की, आठों पहर आनंद । अकलमता कोई ऊपजा, गिने इन्द्र को रंक ।।'** – ऐसी आपकी ऊँची अवस्था हो जायेगी ।

(३) चित्त को सम रखना : शरीर मर जायेगा, यहीं पड़ा रह जायेगा, सुविधा–असुविधा सब सपना हो जायेगा । बचपन के मिले हुए सब सुख और दुःख सपना हो गये, जवानी की सुविधा–असुविधा सपना हो गयी और कल की सुविधा–असुविधा भी सपना हो गयी । तो सुविधा में आकर्षित न होना और असुविधा में विह्वल न होना, समचित्त होना – इससे भी मन शांत और सबल होगा । यह ईश्वरीय तत्त्व को जागृत करने की विधि है ।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।।

'हे अर्जुन ! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है ।' **(भगवद्गीता : ६.३२)**

(४) प्राणायाम करना : खुली हवा में, शुद्ध हवा में दस प्राणायाम रोज करें । इससे मन के दोष, शरीर के रोग मिटने लगते हैं । प्राणायाम में मन की मलिनता दूर करने की आंशिक योग्यताएँ हैं । भगवान श्रीकृष्ण सुबह ध्यानस्थ होते थे, संध्या–प्राणायाम आदि करते थे । भगवान श्रीराम भी ध्यान और प्राणायाम आदि करते थे । इन्द्रियों का स्वामी मन है और मन का स्वामी प्राण है । प्राण तालबद्ध होने से मन की दुष्टता और चंचलता नियंत्रित होती है ।

दस–ग्यारह प्राणायाम करके फिर दोनों नथुनों से श्वास खींचें और योनि को सिकोड़कर रखें, शौच जाने की जगह (गुदा) का संकोचन करें, इसे 'मूलबंध' बोलते हैं । वासनाओं का पुंज मूलाधार चक्र में छुपा रहता है । योनि–संकोचन करें और श्वास को रोक दें, फिर भगवन्नाम–जप करें, इससे वासनाएँ दग्ध होती जायेंगी । **(क्रमशः)** ❐

आद्य शंकराचार्यजी की महानता

(श्रीमद् आद्य शंकराचार्य जयंती : २९ अप्रैल)

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

भगवान आद्य शंकराचार्यजी गूढ़ विषय पर अपने शिष्यों को उपनिषदों का अमृत पान करा रहे थे। एकाएक आचार्य शंकर के मुँह में माँ के दूध का स्वाद उभर आया। बुद्धिमान शंकराचार्यजी ने सोचा, 'यह क्या हो रहा है ! माँ के दूध का स्वाद लपक-लपककर मुँह में आना शुरू हो गया... जरूर कुछ घटना घटी है ।' वे अपनी कुटिया में गये और ध्यानमग्न हो गये तो स्पष्ट दिखा कि माँ अस्वस्थ हैं और याद कर रही हैं । उनके पास योग-सामर्थ्य था । आचार्य शंकर आकाश-मार्ग से उड़कर शृंगेरी मठ के ऊपर से उड़ान भरते हुए कालड़ी (केरल) पहुँच गये । उनकी माता आर्यम्बा बेहोश हालत में पड़ी थीं । उनका रुग्ण शरीर अत्यंत कृश हो गया था । पिता जिन लोगों को धन-सम्पदा दे गये थे, उन्होंने भी मुँह मोड़ लिया था और धन-सम्पदा हजम कर ली थी । बाकी की स्थावर सम्पत्ति पर भी उनकी नजर थी । पड़ोस की एक सज्जन महिला जानकी अम्मा (शुभ्रा) उनकी सेवा करती थी, बाकी के लोग तो बाट देखते थे कि माता आर्यम्बा कब चल बसें तो इनके इतने लम्बे-चौड़े बाग-बगीचे आदि सम्पदा हमें प्राप्त हो । घर में चल सम्पत्ति भी होगी अचल सम्पत्ति तो है ही । कालड़ी गाँव में केवल जानकी अम्मा ही निष्काम भाव से आर्यम्बा की सेवा करती थी ।

शंकराचार्यजी ने अपनी माँ की स्थिति देखी, उनकी आँखों से आँसू झरने लगे और भरे कंठ से माता आर्यम्बा से कहा : ''माँ ! माँ !! माँ !!! तुम्हारा पुत्र शंकर... ! माँ... ! मैं आ गया हूँ ।''

माँ ने आँखें खोलीं । न जाने उस मूर्च्छित माँ में, कमजोर माँ में कहाँ से चेतना आ दौड़ी, वे चिपक-चिपककर स्नेह करने लगीं । वह प्रेमस्वरूप ईश्वर कब किसको मनोवांछित फल प्रदान करे, वह ही जाने ।

माँ की दीन स्थिति देखकर शंकराचार्यजी की आँखों से आँसू रुक ही नहीं रहे थे ।

माँ ने कहा : ''तेरे पिता तो मुझे छोड़ गये, तू भी संन्यासी हो गया । मुझ पर तुमको जरा भी तरस नहीं आता ?''

''माँ ! अब मैं आ गया हूँ, क्षमा करना । माँ ! अब मैं तुमको छोड़कर नहीं जाऊँगा ।''

माँ के आनंद का ठिकाना न रहा । माँ अनजाने में उस प्रेमस्वरूप परमात्मा के चिंतन में डूब गयी, श्रीकृष्ण की भक्त थीं उनकी माँ ।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे !
हे नाथ ! नारायण वासुदेव !!
कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण...

शंकराचार्यजी ने माँ की सेवा-शुश्रूषा शुरू की । केरल के राजा राजशेखर को पता चला । उन्होंने शंकराचार्यजी को पत्र लिखकर भेजा कि 'आप यहाँ पधारे हैं, हम आपको प्रणाम करते हैं...' आदि, आदि ।

गाँव के ब्राह्मणों ने देखा कि शंकराचार्य माँ आर्यम्बा की सम्पदा के अधिकारी बन जायेंगे और सारी सम्पत्ति मठ-मंदिरों को दे देंगे । वहाँ के ब्राह्मण युवकों की मति दुष्ट हो गयी थी

क्योंकि विदेशी आक्रामक धर्मान्तरणवालों ने उनको मांस, शराब खिला-पिलाकर और भारतीय संस्कृति की जड़ें उखाड़नेवाला प्रचार करके उनकी मति को साधुओं के खिलाफ, धर्म के खिलाफ कर दिया था। दारू पीने से बुद्धि राक्षसी, आसुरी हो जाती है ।

वे युवक गाँव के चारों तरफ लट्ठ लेकर खड़े हो गये और जंगल में जो भी सूखी लकड़ियाँ थीं उन्हें कटवाकर उन्होंने अपने पास रख लिया कि शंकराचार्यजी अपनी माता का अग्नि-संस्कार करेंगे, लकड़ी होगी तब न ! कोई ब्राह्मण उनके पास नहीं जाता था और यदि कोई उनके दर्शन करने उनके पास जाना चाहे तो उसे लट्ठ और पत्थरों से मारकर भगा देते थे । वे तो सम्पदा और विरोध में मदोन्मत्त थे । चारों तरफ लट्ठ लेकर घूमते और गंदे-गंदे वचन कहते थे । विधर्मियों ने उन युवकों में इतनी क्रूरता भर दी थी कि आचार्य शंकर की महत्ता पर उनकी दृष्टि ही नहीं जाती थी ।

एक ओर उन उद्दण्डों का समूह तो दूसरी ओर शंकराचार्यजी, आर्यम्बा माता और वह सेविका बाई ! शंकराचार्यजी ने माँ की सेवा-शुश्रूषा तो की लेकिन माँ का शरीर ऐसा कृश हुआ था कि उनके जीवित रहने की कोई आशा न रही ।

माँ ने कहा : ''बेटा ! तू मुझे कुछ उपदेश दे, जिससे मैं अपना मनुष्य-जीवन सफल कर लूँ । यह तन छूट जायेगा, मैं कहीं भटकूँ नहीं, किसी गर्भ में लटकूँ नहीं । बेटा ! तुम संन्यासी हो, संत हो, मुझे सत्संग सुनाओ ।''

शंकराचार्यजी ने विभु, व्यापक, अद्वैत ब्रह्म, आत्मा के बारे में **मनो बुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं...** आदि सुनाया ।

माँ बोली : ''बेटा ! मैं अनपढ़, गँवार, देहात की महिला यह तत्त्वज्ञान, वेदांत तो नहीं समझ सकती । मैंने जीवन भर द्वैत भक्ति की है । मुझे श्रीकृष्ण की भक्ति की कुछ बातें सुना दे, जिससे मुझे भगवद्रस आ जाय, मैं भगवद्धाम पहुँच जाऊँ, भगवान के श्रीचरणों में पहुँच जाऊँ ।''

'महाभारत' में श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिया है उसकी तात्त्विक रूप से व्याख्या शंकराचार्यजी ने की और फिर धीरे-से भगवान के समग्र स्वरूप का वर्णन किया कि ''मैया ! भगवान श्रीकृष्ण, वे बाँकेबिहारी, नंदनंदन, यशोदानंदन परब्रह्म परमात्मा हैं । वे सबको कर्षित-आकर्षित करते हैं, आनंदित करते हैं, वे आनंदस्वरूप हैं ।''

माँ का चित्त तदाकार होता जा रहा था ।

''माँ ! जैसे पुरुष और पुरुष की शक्ति अभिन्न है, ऐसे ही वे भगवान श्रीकृष्ण और उनकी स्वयं की शक्ति 'राधा' उलटा दो तो 'धारा' अर्थात् वृत्ति अभिन्न है । वह राधा और कृष्ण...''

''हाँ-हाँ बेटे ! राधा-कृष्ण, राधा-कृष्ण ।''

आद्य शंकराचार्यजी समझ गये कि माँ राधा-कृष्ण की आकृति में रुक जायेगी तो पूर्णता में नहीं जा पायेगी ।

''माँ ! राधा-कृष्ण... जैसे पुरुष और पुरुष की शक्ति । वैसे तो अकेले भगवान कृष्ण-ही-कृष्ण थे लेकिन **एकाकी न रमते ।** तो 'मैं अनेक बन जाऊँ' - ऐसा संकल्प करके अपनी ही शक्ति से राधा को प्रकट किया । 'राधा' माने उनका सारा जगत और 'कृष्ण' माने जो जगत में व्याप रहे हैं वे परमात्मा । सारा विस्तार राधा-कृष्ण है । यह इन्द्रियगत जो जगत है, वह भगवान का साकार रूप है ।''

इस प्रकार भगवान शंकराचार्यजी ने विश्वरूप में, तैजसरूप में और प्राज्ञरूप में ईश्वर ही हैं, इस तरह वेदांत और भक्तिभाव का मिश्रण करते हुए उपदेश देते-देते माँ के चित्त को चैतन्यस्वभाव में पूर्ण कर दिया । उन्होंने माँ की साकार भक्ति को

निराकार रस में, निराकार ज्ञान में, निराकार स्वस्वरूप में प्रतिष्ठित किया ।

आर्यम्बा माँ की चेतना धीरे-धीरे शांत होने लगी । उनके मुखमण्डल पर परमात्म-प्रसन्नता, विश्रांतियोग का सुख प्रकट हो रहा था और धीरे-धीरे कुछ ही क्षणों में उनका शरीर शांत हो गया ।

गाँव के लोगों को पता चल गया कि माताजी चल बसी हैं । तब विधर्मियों द्वारा बहकाये हुए अपने ही धर्म के वे लोग सोचने लगे, 'अब भाई ! इनको बराबर कसो, घेरो ताकि अपनेको सम्पत्ति मिल जाय ।' किसीको उनके पास न आने देने के भाव से पूरे गाँव के उद्दण्ड जमा हो गये और टोले बनाके रास्ता घेरकर बैठ गये ।

शंकराचार्यजी के लिए बाहर चारों तरफ लट्ठ लेकर गाँव के उद्दण्ड व्यक्ति न जाने क्या-क्या बक रहे थे ! लकड़ियाँ मिलेंगी नहीं और कोई जायेगा नहीं तो ये अग्नि-संस्कार करेंगे ही नहीं, ऐसा माहौल बना दिया था । बूढ़े-बुजुर्ग उन युवकों को समझाते तो उनको भी वे कुछ-का-कुछ सुना देते थे, अवहेलना कर देते थे । शांतात्मा शंकराचार्यजी ने विचार किया कि अब माँ के अग्नि-संस्कार के लिए सामग्री कैसे लायी जाय ? न किसीको यहाँ से जाने देते हैं, न आने देते हैं । तब उस सेविका ने कहा : ''माँ को पता था कि ये विधर्मी लोग ऐसा कुछ करवायेंगे तो माँ ने अपने कफन का सामान सँजोके रखा है, नारियल और धूपबत्ती भी रखी है । अंत्येष्टि की सारी सामग्री माँ ने इकट्ठी करके रखी है, केवल लकड़ियाँ और अग्नि लानी होगी ।''

शंकराचार्यजी विचार करते-करते परम तत्त्व में चले गये । (क्रमशः) ❒

पिछले अंक में प्रकाशित पहेलियों के उत्तर :

१. मछुआरे का जाल

२. सब चिड़ियों के सिर, पर, पैर ।

वाणी के गुण-दोष

(गतांक का शेष)

वाणी के दोष :

(१) कठोरता : गाली, कटुवचन अपनेको प्रिय नहीं होते, कठोर वचन तीर के समान हमारे अंतःकरण में चुभते हैं, इसलिए दूसरे को भी कठोर शब्दों के प्रहार से मत मारो । शब्दप्रहार शस्त्रप्रहार से भी बलवान एवं घातक होता है । मनुष्यों को शब्दों की चोट ऐसी लगती है कि वे आत्महत्या तक कर लेते हैं या दूसरे की हत्या भी कर देते हैं । कठोर वाणी से घर, समाज, संघ कलह-द्वेष के केन्द्र हो जाते हैं, शांति भंग हो जाती है । अतः वाणी में कटुता और कठोरता का न होना अत्यंत आवश्यक है ।

हम अपनी वाणी में कोमलता लायें । बच्चा जब जन्म लेता है तब जिह्वा जन्म से ही रहती है किंतु दाँत बाद में आते हैं । दाँत जब निकलते हैं तब अपनी कठोरता के कारण बहुत कष्ट देते हैं और वृद्धावस्था में जब एक-एक करके उखड़ते हैं तब भी पीड़ा पहुँचाते हैं, किंतु जिह्वा मृत्युपर्यन्त कोमल ही बनी रहती है । अतः कोमलता अधिक स्थायी एवं सुखद है और कठोरता दुःखप्रद । जैसे जिह्वा कोमल है वैसे ही हमें कोमल वाणी का प्रयोग करना चाहिए, कठोर वाणी का नहीं ।

(२) परनिंदा : किसीके दोष-दुर्गुणों की चर्चा करना निंदा है । संत कबीरजी ने कहा है :

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय ।।
कबीर हम सब ते बुरे, हमते भल सब कोय ।
जिन ऐसा करि जानिया, मीत हमारा सोय ।।

मनुष्य को अपनी आँख में पड़ा तृण नहीं दिखायी देता, अपनी ही पीठ में पड़ा दाग नहीं दिखायी देता किंतु उन्हीं आँखों से वह विशाल संसार के प्राणी-पदार्थों को देख लेता है । इसी तरह परदोषदर्शन सरल है किंतु अपने दोषों को देखना अत्यंत कठिन है । अपने दोष तो विवेक के नेत्रों से ही देखे जा सकते हैं । दूसरों की निंदा करने की आदत छोड़कर ही हम अपना सुधार कर सकते हैं । यदि सभी लोग अपने-अपने दोषों को सुधारने लग जायें तो पूरे समाज, राष्ट्र और विश्व का सुधार और कल्याण होना निश्चित है । अतः दूसरों से गुण ग्रहण करो दोष नहीं, गुणों की चर्चा करो दोषों की नहीं ।

(३) असत्यता : जो जैसा है उसको उसी रूप में न कहकर गलत ढंग से प्रयोग करना असत्य या झूठ है । झूठ बोलकर भले ही कोई कुछ समय के लिए अपने दुर्गुणों को छिपा ले किंतु एक दिन उसकी वास्तविकता प्रकट हो ही जाती है । घाव को कितना ही स्वर्ण-आवरण से ढक दो किंतु उसका वीभत्स रूप अवश्य प्रकट होगा । आप नहीं चाहते कि दूसरा कोई झूठ बोलकर आपके साथ छल-कपट, बेईमानी, धोखेबाजी करे, इसलिए आप भी किसीके साथ झूठ बोलकर दुर्व्यवहार न करें । झूठा मनुष्य अविश्वसनीय एवं अनादरणीय होता है । वह स्वयं धोखा खाकर दुःखी होता है या कभी-कभी अपने प्राण भी गँवा बैठता है ।

(४) अश्लीलता : अश्लील शब्दों का उच्चारण करने से पूरे जीवन पर उसका कलुषित प्रभाव पड़ता है, अन्य लोगों पर भी उसका कुप्रभाव पड़ता है । जो नर-नारी अश्लील वार्ता करते हैं, अश्लील गीत गाते हैं, अश्लील व्यवहार या आचरण करते हैं उनके समीप कोई भी सभ्य, चरित्रवान और भला मनुष्य बैठना नहीं चाहता, उनसे बात नहीं करना चाहता । छोटे-छोटे बच्चे वही सीखते हैं जो बड़े-बुजुर्ग, माता-पिता, गुरु या संरक्षक और जिम्मेदार लोग करते हैं । यदि आप चाहते हैं कि आपके अनुगामी शिष्ट और सभ्य नागरिक बनें तो कभी भी अश्लील वार्ता न करें, न दूसरों की अश्लील वार्ता सुनें ।

(५) निरर्थकता : मनुष्य का कर्तव्य है कि वह ऐसे शब्दों का उच्चारण न करे जो निरर्थक एवं अनर्थक हों । इससे अपने तथा दूसरों के समय और शक्ति का दुरुपयोग होता है । जो वाक्यसंयमी है तथा सदैव सत्य, प्रिय, हित तथा मित बोलता है, उससे निरर्थक शब्द नहीं निकलते ।

(६) अहंकारिता : जो मनुष्य अहंकारपूर्ण वचनों का उच्चारण करता है उसको पग-पग पर ठोकर खानी पड़ती है क्योंकि अहंकारी का सिर सदा नीचा होता है । जो अपने शरीर, रंग, रूप, बल, धन, विद्या के मद में चूर हैं वे जो कुछ कहते हैं कालान्तर में उसके दुष्परिणाम सामने आते हैं किंतु अपनी आदतों से मजबूर मनुष्य यह नहीं समझता कि हमारा अहंकार हमारे ही विनाश का कारण है । नेपोलियन ने अपनी ताकत के घमंड में एक बार कहा था : ''अगर आकाश हमारे ऊपर गिरने लगे तो हम उसे अपने भालों की नोकों पर रोक लेंगे ।''

बाद में जब वह निर्वासित था तब उसने कहा था : ''बल-प्रयोग संगठन करने की शक्ति नहीं रखता । दुनिया में सिर्फ दो ही ताकतें हैं - एक आत्मा की, दूसरी तलवार की । लेकिन अंत में जाकर आत्मा सदा तलवार पर विजय प्राप्त करती है ।''

अतएव वाणी के दोषों का त्याग कर उसके गुणों को ग्रहण करना ही वाणी की शोभा है । ❑

उलझो मत, मुक्त बनो

एक होता है पाशवी जीवन... आँखों ने देखी रोशनी, सुंदर लगी, परिणाम का विचार किये बिना पतंगे उड़े और दीपक में जल मरे अथवा ट्रैफिक की लाइट में कुचले गये । इसको बोलते हैं जीव-जंतु का तुच्छ जीवन । ऐसे ही आँखों ने देखा कि हरी-हरी घास है, अब डंडा लगेगा-नहीं लगेगा इसका विचार किये बिना लगा दिया मुँह और पड़ा डंडा । देखा सुंदर या सुंदरी और लग गये पीछे । आँखों ने दिखाया आकर्षण, नाक ने सुगंध की तरफ, जीभ ने हलवाई की दुकान की तरफ अथवा चटपटी चाट की तरफ आकर्षित किया तो ऐन्द्रिक आकर्षण के पीछे फिसल जाना, इसको बोलते हैं पाशवी जीवन, तुच्छ जीवन ।

इससे कुछ अलग होता है मानवीय जीवन । यह मेरी पत्नी है लेकिन ऋतुकाल के इतने दिन के बाद ही संसार-व्यवहार होगा, पूर्णिमा, अमावस्या अथवा पर्व के दिनों में नहीं होगा - यह है मानवीय जीवन । लेकिन इतने में ही घूमकर अगर खत्म हुआ तो मनुष्य मरकर या तो पुण्यकर्म से ऊँचे लोक में जायेगा फिर गिरेगा अथवा पापकर्म हुआ तो नरक में जायेगा फिर जीव-जंतुओं की योनियों में आयेगा । मानवीय जीवन पाशवी जीवन से तो ठीक है लेकिन मनुष्यता को महकाये बिना का जीवन है । इसको बोलते हैं लाचार जीवन, पराधीन जीवन ।

पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं ।

तीसरा होता है सात्त्विक जीवन । भगवान में, इष्ट में प्रीति, रुचि, पर्व का फायदा उठाना । जैसे - भगवान नारायण दान से, यज्ञ से, धूप-दीप से, पूजा-पाठ से संतुष्ट होते हैं और जो पुण्य होता है, उससे भी ज्यादा पुण्य माघ, वैशाख और कार्तिक मासों में सुबह सूर्योदय से पूर्व स्नान करने से होता है ताकि आप सर्दी पचा सको, गर्मी भी पचा सको और आपके जीवन में संकल्पबल बढ़े, बुद्धिबल बढ़े ।

सात्त्विक जीवन से भी ऊँचा होता है योग, समाधि और धर्म के अनुकूल जीवन जीकर समाधि से शक्तियाँ पाना, ऋद्धि-सिद्धियाँ पाना, लोक-लोकांतर की बात जानना लेकिन यह भी आखिरी नहीं है । ये सब माया के राज्य में दबे हुए हैं । योगी की समाधि लगेगी तभी वह सुखी होगा और समाधि टूटी तो फिर गड़बड़ी । भक्त की भक्ति हुई तो सुखी और भक्ति से फिसला तो दुःखी । मंदिर, मसजिद, पूजास्थल में गये लेकिन फिर वही-के-वही । वही दुःख, चिंता, भय, राग-द्वेष ।

तो भोगी इसलिए रोता है कि रोज बढ़िया चीज नहीं मिलती, इस जॉब में यह बढ़िया नहीं होता... और भक्त इसलिए रोता है कि प्रेयर सब फलतीं नहीं लेकिन पूर्ण जीवनवाले महापुरुष कहते हैं कि पदोन्नति (प्रमोशन) और सुविधाएँ सदा नहीं रहतीं, असुविधाएँ सदा नहीं रहतीं, भोग भी सदा नहीं रहता, त्याग भी सदा नहीं रहता फिर भी इनको जाननेवाला अंतर्यामी परमात्मा सदा रहता है ।

हम हैं अपने-आप हर परिस्थिति के बाप !

यह होता है पूर्ण आत्मा-परमात्मा को पहचाने हुए महापुरुषों का जीवन ! ऐसे लोग जो शराब और मांस से दूर सात्त्विक जीवन जीते हैं, ऐसे पुरुष आत्म-परमात्म पद में स्थिति करते हैं, जागते हैं । उनकी निगाहों से आध्यात्मिक तरंगें निकलती हैं, परमात्मा को छूकर आनेवाली उनकी वाणी से सत्संग निकलता है और उनके अस्तित्व से माहौल में विलक्षणता छा जाती है... वहाँ वाणी नहीं जाती है । ऐसे महापुरुष को देखकर साधक कहता है :

गुरुजी ! तुम तसल्ली न दो, सिर्फ बैठे ही रहो।
महफिल का रंग बदल जायेगा,
गिरता हुआ दिल भी सँभल जायेगा ।।

काम में, क्रोध में, लोभ में, पशुता में, मानवीयता में, देवत्व में – इनमें जो दिल गिर रहा है, वह ऐसे ब्रह्मज्ञानी गुरुओं को देखकर सँभलने लगता है । ऐसे सत्पुरुषों के दर्शन के बारे में संत कबीरजी ने कहा है :

तीरथ नहाये एक फल, संत मिले फल चार ।
सद्गुरु मिले अनंत फल, कहत कबीर विचार ।।

जिसका अंत न हो उसको बोलते हैं अनंत । जिस फल से, जिस पद से आप कभी च्युत न हों वह आत्मपद है । उसको पानेवाली बुद्धि बनाना यह सत्संग का काम है । योग-समाधि करके बैठे रहोगे तो 'ईशावास्य उपनिषद्' टोकती है :

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
(मंत्र : ९)

जो कारणब्रह्म की उपासना में उलझे रहते हैं वे भी घोर अंधकार में प्रवेश करते हैं, प्रकृति के अंधकारमय कूप में गिरते हैं ।

उपनिषद् कहती है कि जो कार्यब्रह्म अर्थात् शरीर व संसार की उपासना में उलझा है, भोगों में रम गया है वह तो अंधकार में प्रवेश करता ही है लेकिन जो अद्वैत आत्मसत्ता को जानने का लक्ष्य न रखकर केवल कारणब्रह्म अर्थात् निराकार की उपासना में, योग-समाधि में ही लगा रहता है वह भी घोर अंधकार में प्रवेश करता है । क्योंकि वह योगाभ्यास उस उपासक को अधिक-से-अधिक स्वर्गलोक या ब्रह्मलोक की प्राप्ति करा देगा परंतु वहाँ के भोगों में रमकर वह जन्म-मरण के चक्र में उलझा ही रहेगा ।

एक भोग के कूप में गिर रहा है तो दूसरा योग के कूप में बैठा है, तीसरा पशुता की नाली में बह रहा है लेकिन ब्रह्मज्ञानी इन सबसे निराला है । वह कहता है– न पशुता की नाली में बहो, न भोग की दलदल में फँसो, न योग के एक कोने में बैठो । योग के समय योग, भोग के समय भोग, व्यवहार के समय व्यवहार करो । संत कबीरजी ने कहा :

ऊठत बैठत वही उटाने ।
कहत कबीर हम उसी ठिकाने ।।

उठते-बैठते, खाते-पीते, लेते-देते जो सदा एकरस है वह है हमारा अपना-आप... हर परिस्थिति का बाप... ऐसा ब्रह्मज्ञान पा ले । काहे को बेटियों की चिंता करके सिकुड़ता है ? बेटे की चिंता करके, जॉब की चिंता करके जॉबर बनने की क्या कोशिश करता है ? जो बना है वह बिगड़ेगा । जो पहले था, अभी है, बाद में रहेगा उस अपने असली स्वरूप को जरा-सा मान ले, जरा-सा जान ले । तेरे बाप का जाता क्या है !

भागती फिरती थी दुनिया,
जबकि तलब करते थे हम ।
अब जबकि ठुकरा दी, तो बेकरार आने को है ।।

आप अपने ईश्वरत्व में आ जाइये । प्रकृति की चीजों के लिए आप जॉबर बनकर, नौकर बनकर क्या जिंदगी बर्बाद कर रहे हो ! नौकरी करो, जॉब करो लेकिन जिससे किया जाता है और जिसका फल अनंत होता है उस ज्ञानस्वभाव में आइये, उस ध्यानस्वभाव में आइये, उस प्रेमस्वभाव में आइये, उस कर्तव्यस्वभाव में आइये। और यह सब कर-कराके 'क्या करें, यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ...' अरे... ! चल, आगे चल ! जो हो गया सो हो गया, जो नहीं हुआ सो नहीं हुआ... आगे बढ़ ! यह तो संसार है, चलता रहेगा। अपने पैर में जूते पहन ले, सारी धरती बिना काँटों की हो जायेगी । तू काहे डरे, काहे मरे ! जो हुआ अच्छा हुआ, जो हो रहा है अच्छा है, जो होगा वह भी अच्छा होगा यह नियम पक्का है । तू अपने-आपको ठीक करके ज्ञान की नाव में बैठ जा बस ! अपने आत्मा को जान, ज्ञान-प्रकाश, सत्य-प्रकाश में जी । ❐

दिव्य गुणसम्पन्न देवर्षि नारदजी

(देवर्षि नारद जयंती : १० मई)

एक समय महीसागर संगम तीर्थ में भगवान श्रीकृष्ण ने देवर्षि नारदजी की पूजा-अर्चना की । वहाँ महाराज उग्रसेन ने पूछा : ''जगदीश्वर श्रीकृष्ण ! आपके प्रति देवर्षि नारदजी का अत्यंत प्रेम कैसे है ?''

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : ''राजन् ! मैं देवराज इंद्र द्वारा किये गये स्तोत्रपाठ से दिव्यदृष्टि-सम्पन्न श्री नारदजी की सदा स्तुति करता हूँ । आप भी वह स्तुति सुनिये :

'जो ब्रह्माजी की गोद से प्रकट हुए हैं, जिनके मन में अहंकार नहीं है, जिनका विश्वविख्यात चरित्र किसीसे छिपा नहीं है, जिनमें अरति (उद्वेग), क्रोध, चपलता व भय का सर्वथा अभाव है, जो धीर होते हुए भी दीर्घसूत्री (किसी कार्य में अधिक विलम्ब करनेवाले) नहीं हैं, जो कामना या लोभवश झूठी बात मुँह से नहीं निकालते, जो अध्यात्म गति के तत्त्व को जाननेवाले, ज्ञानशक्ति-सम्पन्न तथा जितेन्द्रिय हैं, जिनमें सरलता भरी है और जो यथार्थ बात कहनेवाले हैं उन नारदजी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

जो तेज, यश, बुद्धि, विनय, जन्म तथा तपस्या - इन सभी दृष्टियों से बड़े हैं, जिनका स्वभाव सुखमय, वेश सुंदर तथा भोजन उत्तम है, जो प्रकाशमान, शुभदृष्टि-सम्पन्न तथा सुंदर वचन बोलनेवाले हैं, जो उत्साहपूर्वक सबका कल्याण करते हैं, जिनमें पाप का लेशमात्र भी नहीं है, जो परोपकार करने से कभी अघाते नहीं, जो सदा वेद, स्मृति व पुराणों में बताये हुए धर्म का आश्रय लेते हैं तथा प्रिय-अप्रिय से रहित हैं, जो खान-पान आदि भोगों में कभी लिप्त नहीं होते, जो आलस्यरहित तथा बहुश्रुत ब्राह्मण हैं, जिनके मुख से अद्भुत बातें-विचित्र कथाएँ सुनने को मिलती हैं, जिन्हें धन के लोभ, काम या क्रोध के कारण भी पहले कभी भ्रम नहीं हुआ है, जिन्होंने इन तीनों दोषों का नाश कर दिया है, जिनके अंतःकरण से सम्मोहनरूप दोष दूर हो गया है, जो कल्याणमय भगवान व भागवत धर्म में दृढ़ भक्ति रखते हैं, जिनकी नीति बहुत उत्तम है तथा जो संकोची स्वभाव के हैं, जो समस्त संगों से अनासक्त हैं, जिनके मन में किसी संशय के लिए स्थान नहीं है, जो बड़े अच्छे वक्ता हैं, जो किसी भी शास्त्र में दोषदृष्टि नहीं करते तथा तपस्या का अनुष्ठान ही जिनका जीवन है, जिनका समय भगवत्-चिंतन के बिना कभी व्यर्थ नहीं जाता और जो अपने मन को सदा वश में रखते हैं उन श्री नारदजी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

जिन्होंने तप के लिए श्रम किया, जिनकी बुद्धि पवित्र एवं वश में है, जो समाधि से कभी तृप्त नहीं होते, अपने प्रयत्न में सदा सावधान रहते हैं, जो अर्थलाभ होने से हर्ष नहीं मानते व हानि से क्लेश का अनुभव नहीं करते, जो सर्वगुणसम्पन्न, दक्ष, पवित्र, कातरतारहित, कालज्ञ व नीतिज्ञ हैं उन देवर्षि नारदजी को मैं भजता हूँ ।'

इस स्तुति के कारण वे मुनिश्रेष्ठ मुझ पर अधिक प्रेम रखते हैं । दूसरा कोई भी व्यक्ति यदि पवित्र होकर प्रतिदिन इस स्तुति का पाठ करता है तो देवर्षि नारदजी बहुत शीघ्र उस पर अतिशय कृपा करते हैं ।''

देवर्षि नारदजी की इस स्तुति के द्वारा भगवान भक्तों के आदर्श गुणों को प्रकट करते हैं । भक्त की इतनी महिमा है कि स्वयं भगवान भी उनकी स्तुति करते हैं ।

भगवद्भक्तों के गुणों का स्मरण करनेवाला उनका प्रीतिभाजन होता है और **(शेष पृष्ठ २१ पर)**

सफलता का रहस्य

(गतांक से आगे)

अगर फूल की महक पौधे की दी हुई है तो काँटों को रस भी उसी पौधे ने दे रखा है । जिस रस से गुलाब महका है उसी रस से काँटे भी पनपे हैं। काँटों के कारण ही गुलाब की सुरक्षा होती है ऐसी सृष्टिकर्ता आदिचैतन्य की लीला है । फरियादी और द्वेषी जीवन जीकर अपना सत्यानाश मत करो । अपने पुण्य नष्ट मत करो । जब-जब दुःख होता है तब समझ लो कि ईश्वर के विधान के खिलाफ आपका मन कुछ-न-कुछ विचार कर रहा है, तभी दुःख होता है, तभी परेशानी आती है, पलायनवादिता आती है ।

जीवन की सब चेष्टाएँ केवल ईश्वर की प्रसन्नता के लिए हों । किसी व्यक्ति को फँसाने के लिए यदि वस्त्रालंकार धारण किये तो उस व्यक्ति से आपको दुःख मिलेगा क्योंकि उसमें भी ईश्वर बैठा है। जब सबमें ईश्वर है, सर्वत्र ईश्वर है तो जहाँ जो कुछ करते हो, ईश्वर के साथ ही कर रहे हो। जब तक यह दृष्टि परिपक्व नहीं होती तब तक ठोकरें खानी पड़ती हैं ।

किसी आदमी का धन, वैभव, सत्ता देखकर 'वह अपने काम में आयेगा' ऐसा समझकर उससे नाता जोड़ा तो अंत में धोखा खाओगे । बड़े आदमी का बड़प्पन जिस परम बड़े के कारण है, उसके नाते अगर उससे व्यवहार करते हो तो उसका धन, सत्ता, वैभव, वस्तुएँ आपकी सेवा में अवश्य लग जायेंगे, लेकिन भीतरवाले से नाता बिगाड़कर उसकी बाह्य वस्तुएँ देखकर उसकी चापलूसी में लगे तो वह आपका नहीं रहेगा।

नगाड़े से निकलती हुई ध्वनि पकड़ने जाओगे तो नहीं पकड़ पाओगे लेकिन नगाड़ा बजानेवाले को पकड़ लो तो ध्वनि पर आपका अपने-आप नियंत्रण हो जायेगा । ऐसे ही मूल को जिसने पकड़ लिया उसने कार्य-कारण पर नियंत्रण पा लिया । सबका मूल तो परमात्मा है । अगर आपका चित्त परमात्मा में प्रतिष्ठित हो गया तो सारे कार्य-कारण आपके अनुकूल हो जायेंगे । चाहे आस्तिक हो चाहे नास्तिक, यह दैवी नियम सब पर लागू होता है । ईश्वर को कोई माने या न माने, अनजाने में भी जो अंतर्मुख होता है, एकाकार होता है, ईश्वर के नाते, समाज-सेवा के नाते, सच्चाई के नाते, धर्म के नाते, अपने आत्मस्वभाव के नाते जाने-अनजाने में जब उसका आचरण वेदांती होता है तो वह अपने जीवन में सफल होता है ।

कोई भले धर्म की दुहाइयाँ देता हो पर उसका आचरण वेदान्ती नहीं है तो वह दुःखी रहेगा । कोई कितना भी धार्मिक हो लेकिन आचार में वेदांत नहीं है तो वह पराधीन रहेगा । कोई व्यक्ति कितना भी अधार्मिक दिखे लेकिन उसका आचरण वेदांती है तो वह सफल होगा, सब पर राज्य करेगा । चाहे किसी देवी-देवता, ईश्वर, धर्म या मजहब को नहीं मानता फिर भी भीतर सच्चाई है, किसीका बुरा नहीं चाहता, इन्द्रियों को वश में रखता है, मन शांत है, प्रसन्न है तो यह ईश्वर की भक्ति है।

यह जरूरी नहीं कि मंदिर-मसजिद में जाकर गिड़गिड़ाने से ही भक्ति होती है, सच्चाई और सद्गुणों के साथ अंतर्यामी परमात्मा से आप जितने जुड़ते हो उतनी आपकी ईश्वर-भक्ति बन जाती है । जितना अंतर्यामी ईश्वर से नाता तोड़कर आप दूर जाते हो, भीतर एक और बाहर दूसरा आचरण करते हो उतना कार्य-कारण के नियम भी आप पर बुरा प्रभाव डालेंगे।

(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'जीवन विकास' से क्रमशः) ❒

आत्महत्या : कायरता की पराकाष्ठा

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

मृत्यु एक ईश्वरीय वरदान है, फिर भी यदि कोई आत्महत्या करता है तो वह महापाप है । परमात्मा ने हमें यह अमूल्य मानव चोला दिया है तो हमारा कर्तव्य है कि हम इसे साफ-सुथरा रखें, इसे स्वस्थ-तंदुरुस्त रखें । ऐसा नहीं कि मृत्यु जरूरी है तो अनाप-शनाप खाकर मौत को आमंत्रण दें, आत्महत्या करें । यद्यपि कपड़ा मैला होता है, गलता है, फटता है लेकिन उसे जानबूझकर फाड़ देना तो बेवकूफी है । ऐसे ही शरीर बूढ़ा होता है, बीमार होता है, मरता है- यह प्रकृति की व्यवस्था है, शरीर को जानबूझकर मौत के मुँह में धकेलना ठीक नहीं ।

कुछ विद्यार्थी जो परीक्षा में विफल हो जाते हैं, व्यापारी जो बाजार की मंदी की चपेट में आ जाते हैं उनमें से कमजोर मनवाले कई घबराके अथवा चिंता-तनाव से घिरके आत्महत्या कर लेते हैं । ऐसे लोगों को चाहिए कि वे कभी नकारात्मक न सोचें, पलायनवादिता के या हलके विचार न करें । असफल हो जायें तब भी भागने के या आत्महत्या के विचार न करें, फिर से पुरुषार्थ करें तो अवश्य सफल होंगे ।

मनुष्य का जीवन कुदरत ने ऐसा लचीला बनाया है कि वह जितनी चाहे उतनी उन्नति कर सकता है । कठिन-से-कठिन परिस्थिति से जूझकर, दुःख-मुसीबतों और विघ्न-बाधाओं के सिर पर पैर रखके परम पद तक पहुँच सकता है । बस, उस योग्यता का पता चल जाय, उस योग्यता पर विश्वास हो जाय ।

भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई । जिसके भौंह के इशारेमात्र से सृष्टि का प्रलय हो जाता है, ऐसा सर्वसमर्थ परब्रह्म परमात्मा तुम्हारा सखा होकर बैठा है और जरा-सी मंदी आयी तो तुम फाँसी लगाकर मर गये, खेत-खली में जरा-सी गड़बड़ हुई और तुम आत्महत्या करने लगे, क्या तुच्छ बुद्धि है ! धिक्कार है आत्महत्या करनेवालों को ! ऐसे लोगों को 'हिजड़ा' कहेंगे तो हिजड़े नाराज हो जायेंगे । बोलेंगे : 'बाबा ! हम कहाँ आत्महत्या करते हैं ? हम तो चुनाव लड़कर राज्य भी कर लेते हैं । हमारा नाम ऐसे लोगों को क्यों देते हो ?' ऐसे लोगों को 'गधा' कह दें तो गधे भी नाराज हो जायेंगे । बोलेंगे : 'बाबा ! हमने कहाँ आत्महत्या की ? हम तो डंडे सहते हैं, सर्दी-गर्मी सहते हैं, दुःख सहते हैं । खाने को मिला-न-मिला तो भी चुप्पी रखकर दूसरे दिन बोझा उठाते हैं, फिर भी हम कभी आत्महत्या नहीं करते ।' आत्महत्यारे को 'कुत्ता' बोलें तो कुत्ता बोलेगा : 'हम भूख-प्यास, फटकार सहते रहते हैं, डंडे, पत्थर सहते हैं फिर भी आत्महत्या नहीं करते । हमें कहीं पूँछ दबानी पड़ती है, कहीं हिलानी पड़ती है लेकिन हम तो जी रहे हैं ।' तो आत्महत्यारों को कुत्ता बोलोगे तो कुत्तों की बदनामी होगी । जो आत्महत्या करते हैं उनको गधा कहो, कुत्ता कहो, हिजड़ा कहो तो ये सब नाराज हो जायेंगे ।

मनुष्य विषय-विलास, शराब-कबाब और डिस्को करके पिशाच-सा जीवन जीकर मरने को नहीं आया है । आत्महत्या करना भोगी और कायर मन की पहचान है । सत्कर्म, सद्गुरुओं का सान्निध्य-सेवन और आत्मसाक्षात्कार करके मुक्त होना यह साधक, भक्त और योगी मन की

पहचान है ।

नासमझ लोग क्या करते हैं ? जरा-सा दुःख पड़ता है तो दुःख देनेवाले पर लांछन लगाते हैं, परिस्थितियों को दोष देते हैं अथवा अपनेको पापी समझकर अपनेको ही कोसते हैं । कुछ कायर तो आत्महत्या करने तक का सोच लेते हैं । कुछ पवित्र होंगे तो किन्हीं संत-महात्मा के पास जाकर दुःख से मुक्ति पाते हैं ।

जो गुरुओं के द्वार पर जाते हैं उनको कसौटियों से पार होने की कुंजियाँ सहज में ही मिल जाती हैं । इससे उनके दोनों हाथों में लड्डू होते हैं । एक तो संत-सान्निध्य से हृदय की तपन शांत होती है, समस्या का हल मिलता है, साथ-ही-साथ जीवन को नयी दिशा भी मिलती है ।

मानव को किसी भी परिस्थिति में आत्महत्या का विचार नहीं करना चाहिए तथा अपने मन को दुःखी होने से बचाना चाहिए । दुनिया में जो भी दुःख है वह अज्ञान का ही फल है, नासमझी का ही फल है । जहाँ-जहाँ दुःख है, वहाँ-वहाँ नासमझी है । बिना नासमझी के दुःख टिक नहीं सकता, हो नहीं सकता । शरीर की बीमारी को अपनी बीमारी मानते हैं यह बेवकूफी है । नश्वर सफलता को अपनी सफलता मानते हैं, नश्वर विफलता को अपनी विफलता मानते हैं, अपने-आपको शरीर मानते हैं और जो छूट जानेवाली हैं उन चीजों को मेरी मानते हैं । यह अज्ञान है कि नहीं है ? मरने के बाद भी जो रहेगा उसको नहीं जानते और जो मर जानेवाला है उसको 'मैं' मानते हैं । बेवकूफी है कि नहीं है ?

छोटे-मोटे नहीं, गेटे जैसे विद्वान भी कभी आत्महत्या का विचार कर लेते हैं परंतु डर के मारे कर नहीं पाते । कई विद्वान भी आत्महत्या कर लेते हैं क्योंकि वेदव्यासजी का ज्ञान नहीं है । नहीं तो एक कुत्ता जिसकी टाँग कटी है, पूँछ कटी है, शरीर में घाव पड़े हैं उसको कोई मारने जाय तो अपने जीवन की रक्षा के लिए सब प्रयत्न करेगा और आज का मानव आत्महत्या कर लेता है, कितनी बेवकूफी है ! ये बरसात के पतंगे हैं न, दीये में आते हैं और अंग जल जाते हैं, फरफराते हैं, फिर भी आप उनको मारने की कोशिश करो तो बचने के लिए वे भी छटपटायेंगे, वहाँ से भागेंगे ।

जीवनदाता ने जीवन दिया है तो अपनी तरफ से उसको बचाने का सब प्रयत्न करना चाहिए । जो आत्महत्या करते हैं उनको कई वर्षों तक शरीर नहीं मिलता और भटकते रहते हैं । जो आत्महत्या करके मर गया, उसको कंधा देनेवाले को भी हानि होती है, दुःख उठाना पड़ता है । 'पाराशर स्मृति' व 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में तो यहाँ तक लिखा गया है कि जिसने आत्महत्या की उसने प्रकृति की, ईश्वर की दी हुई शरीररूपी सौगात से खिलवाड़ किया है, उसका अपमान किया है, उस अभागे को कंधा मत दो । किसी गंदगी उठानेवाले को बोलो कि उसका शव रस्सी से बाँधकर मार्ग से घसीटता हुआ ले जाय, ताकि उसको देखकर दूसरा ऐसी बेवकूफी न करे ।

आप सत्य का, ईश्वर का आश्रय लीजिये और परिस्थितियों के प्रभाव से बचिये । जो लोग परिस्थितियों को सत्य मानते हैं वे उनसे घबराकर कभी आत्महत्या की बात भी सोचते-करते हैं; यह बहुत बड़ा अपराध है ।

मैंने सूरत में सत्संग किया (दिसम्बर २००८ में) तब आर्थिक मंदी की चपेट में आये रत्न-कलाकारों को संदेश दिया कि जो मुसीबत में आकर आत्महत्या करने का विचार करते हैं उन्हें चाहिए कि अपनी दैन्य अवस्था का, लाचारी का तो पता चल गया, अब भगवान के सामर्थ्य का थोड़ा चिंतन करो और कमरा बंद करके भगवान को आर्त भाव से प्रार्थना करो, आँसू बहाओ : 'भगवान ! मैं कुटुम्ब का पालन नहीं कर सकता हूँ और आप सर्वसमर्थ हो...' ऐसी प्रार्थना करते-

करते भगवान को दंडवत् प्रणाम करके लेट जाओ, भगवान के गले पड़ जाओ । अपनी तरफ से पुरुषार्थ में कमी न करो लेकिन जब आत्महत्या करने की नौबत आ रही है तो अहं का विसर्जन करो । उसी समय नहीं तो एकाध दिन में रास्ता निकल आयेगा ।

रात अँधियारी हो, काली घटाएँ छायी हों ।
मंजिल तेरी दूर हो, हर तरफ से मजबूर हों ।।

फिर क्या करोगे ?

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।

'हे अच्युत ! हे अनंत ! हे गोविंद ! – इस नामोच्चारणरूप औषध से तमाम रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ... सत्य कहता हूँ ।'

आत्महत्या यह मानस रोग है । मन की कायरता की पराकाष्ठा होती है तभी आदमी आत्महत्या का विचार करता है तो उस समय भगवान को पुकारो ।

'स्कंद पुराण' के काशी खंड, पूर्वार्द्ध (१२.१२,१३) में आता है : 'आत्महत्यारे घोर नरकों में जाते हैं और हजारों नरक-यातनाएँ भोगकर फिर देहाती सूअरों की योनि में जन्म लेते हैं । इसलिए समझदार मनुष्य को कभी भूलकर भी आत्महत्या नहीं करनी चाहिए । आत्महत्यारों का न तो इस लोक में और न परलोक में ही कल्याण होता है ।'

'पाराशर स्मृति (४.१,२)' के अनुसार 'आत्महत्या करनेवाला मनुष्य ६० हजार वर्षों तक अंधतामिस्र नरक में निवास करता है ।'

मीडिया को समाज की यह सेवा करनी चाहिए कि जो आत्महत्या करते हैं उनकी तस्वीर देकर नीचे ऐसे कड़क शब्द लिखने चाहिए कि पढ़नेवाले कभी आत्महत्या का विचार ही न करें ।

जहाँ भी आत्महत्याएँ होती हों वहाँ इस सत्संग का जरा प्रचार होना चाहिए । ❐

वैशाख मास माहात्म्य

(वैशाख स्नान : ९ अप्रैल से ९ मई)

वैशाख मास सुख से साध्य, पापरूपी इंधन को अग्नि की भाँति जलानेवाला, अतिशय पुण्य प्रदान करनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – चारों पुरुषार्थों को देनेवाला है ।

देवर्षि नारदजी राजा अम्बरीष से कहते हैं : ''राजन् ! जो वैशाख में सूर्योदय से पहले भगवत्-चिंतन करते हुए पुण्यस्नान करता है, उससे भगवान विष्णु निरंतर प्रीति करते हैं । पाप तभी तक गरजते हैं जब तक जीव यह पुण्यस्नान नहीं करता ।

वैशाख मास में सब तीर्थ आदि देवता बाहर के जल (तीर्थ के अतिरिक्त) में भी सदैव स्थित रहते हैं । भगवान विष्णु की आज्ञा से मनुष्यों का कल्याण करने के लिए वे सूर्योदय से लेकर छः दण्ड (२ घंटे २४ मिनट) तक वहाँ मौजूद रहते हैं । सब दानों से जो पुण्य होता है और सब तीर्थों में जो फल होता है, उसीको मनुष्य वैशाख में केवल जलदान करके पा लेता है । यह सब दानों से बढ़कर हितकारी है ।''

वैशाख के शुक्ल पक्ष की तृतीया (२७ अप्रैल) 'अक्षय तृतीया' के नाम से जानी जाती है । यह अक्षय फलदायिनी होती है । इस दिन दिये गये दान, किये गये प्रातः पुण्यस्नान, जप, तप, हवन आदि कर्मों का शुभ और अनंत फल मिलता है ।

'भविष्य पुराण' व 'मत्स्य पुराण' के अनुसार इस तिथि को किये गये सभी कर्मों का, उपवास का फल अक्षय हो जाता है, इसलिए इसका नाम 'अक्षय' पड़ा है । त्रेतायुग का प्रारम्भ इसी तिथि से हुआ है । इसलिए यह समस्त पापनाशक तथा

सर्वसौभाग्य-प्रदायक है ।

इसमें पानी के घड़े, पंखे, ओले (खाँड़ के लड्डू), खड़ाऊँ, पादत्राण (जूता), छाता, गौ, भूमि, स्वर्णपात्र, वस्त्र आदि का दान पुण्यकारी तथा गंगास्नान अति पुण्यकारी माना गया है । इस दिन कृषिकार्य का प्रारम्भ शुभ और समृद्धि-प्रदायक है । इसी तिथि को ऋषि नर-नारायण, भगवान परशुराम और भगवान हयग्रीव का अवतार हुआ था । यह अत्यंत पवित्र और सुख-सौभाग्य प्रदान करनेवाली तिथि है । इस तिथि को सुख-समृद्धि व सफलता की कामना से व्रतोत्सव मनाने के साथ ही अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र-आभूषण आदि बनवाये, खरीदे और धारण किये जाते हैं । नयी भूमि खरीदना, भवन, संस्था आदि में प्रवेश इस तिथि को शुभ व फलदायी माना जाता है ।

श्रुतदेवजी राजा जनक से कहते हैं : ''राजेन्द्र ! वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में जो अंतिम तीन पुण्यमयी तिथियाँ हैं - त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा (७ से ९ मई) ये बड़ी पवित्र व शुभकारक हैं । इनका नाम 'पुष्करिणी' है, ये सब पापों का क्षय करनेवाली हैं । पूर्वकाल में वैशाख शुक्ल एकादशी को शुभ अमृत प्रकट हुआ । द्वादशी को भगवान विष्णु ने उसकी रक्षा की । त्रयोदशी को उन श्रीहरि ने देवताओं को सुधा-पान कराया । चतुर्दशी को देवविरोधी दैत्यों का संहार किया और पूर्णिमा के दिन समस्त देवताओं को उनका साम्राज्य प्राप्त हो गया । इसलिए देवताओं ने संतुष्ट होकर इन तीन तिथियों को वर दिया : 'वैशाख की ये तीन शुभ तिथियाँ मनुष्यों के पापों का नाश करनेवाली तथा उन्हें पुत्र-पौत्रादि फल देनेवाली हों । जो सम्पूर्ण वैशाख में प्रातः पुण्यस्नान न कर सका हो, वह इन तिथियों में उसे कर लेने पर पूर्ण फल को ही पाता है । वैशाख में लौकिक कामनाओं को नियंत्रित करने पर मनुष्य निश्चय ही भगवान विष्णु का सायुज्य प्राप्त कर लेता है ।'

जो वैशाख में अंतिम तीन दिन 'भगवद्गीता' का पाठ करता है, उसे प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है और जो 'श्री विष्णुसहस्रनाम' का पाठ करता है, उसके पुण्यफल का वर्णन करने में भूलोक व स्वर्गलोक में कौन समर्थ है ।

पूर्णिमा को सहस्रनामों के द्वारा भगवान मधुसूदन को दूध से नहलाकर मनुष्य पापहीन वैकुण्ठधाम में जाता है । वैशाख में प्रतिदिन 'भागवत' के आधे या चौथाई श्लोक का पाठ करनेवाला मनुष्य ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है । जो वैशाख के अंतिम तीन दिनों में 'भागवत' शास्त्र का श्रवण करता है, वह जल से कमल के पत्ते की भाँति कभी पापों से लिप्त नहीं होता । उक्त तीनों दिनों के सम्यक् सेवन से कितने ही मनुष्यों ने देवत्व प्राप्त कर लिया, कितने ही सिद्ध हो गये और कितनों ने ब्रह्मत्व पा लिया । इसलिए वैशाख के अंतिम तीन दिनों में पुण्यस्नान, दान और भगवत्पूजन आदि अवश्य करना चाहिए ।''

देवर्षि नारदजी ने यह उत्तम उपाख्यान राजर्षि अम्बरीष को सुनाते हुए कहा था कि यह सब पापों का नाशक तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियों को देनेवाला है । इससे मनुष्य भुक्ति, मुक्ति, ज्ञान एवं मोक्ष पाता है । जो इस पापनाशक एवं पुण्यवर्द्धक उपाख्यान को सुनता अथवा पढ़ता है, वह श्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है ।

ॐ ॐ ॐ... पुण्यमय अंतर्यामी प्रभु में विश्रांति... ❑

(पृष्ठ १६ 'दिव्य गुणसम्पन्न देवर्षि नारदजी' का शेष)

उसमें भी वे गुण आते हैं । भक्त की स्मृति तथा उनके गुणों का स्मरण, चर्चा करने से अंतःकरण पवित्र होता है और जगत का मंगल होता है ।

प्राणिमात्र के कल्याण की भावना रखनेवाले नारदजी ईश्वरीय मार्ग पर अग्रसर होने की इच्छा रखनेवाले प्राणियों को सहयोग देते रहते हैं । उन्होंने कितने प्राणियों को किस प्रकार भगवान के पावन चरणों में पहुँचा दिया, इसकी गणना संभव नहीं है । वे सदा भक्तों, जिज्ञासुओं के मार्गदर्शन में लगे रहते हैं । जीवन्मुक्ति की इच्छा रखनेवाले साधु पुरुषों के हित के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहते हैं । उनके चरणों में हमारे कोटि-कोटि प्रणाम हैं ! ❑

ससुराल की रीति

एक लड़की विवाह करके ससुराल आयी । ससुराल में उसकी दादी सास भी थी । लड़की ने देखा कि दादी सास का बड़ा अपमान-तिरस्कार हो रहा है । सास उनको ठोकरें मारती है, अपशब्द सुनाती रहती है, बहुत दुःख देती है । यह देखकर उस लड़की को बुरा लगा और दया भी आयी । उसने विचार किया कि 'अगर मैं अपनी सास से कहूँ कि आप अपनी सास का तिरस्कार मत किया करो तो वे कहेंगी कि कल की छोकरी आकर मेरे को उपदेश देती है, गुरु बनती है ।' अतः उसने अपनी सास से कुछ नहीं कहा । उसने एक उपाय सोचा ।

वह रोज अपना कामकाज निपटाकर दादी सास के पास जाकर बैठ जाती और उनके पैर दबाती । जब वह वहाँ ज्यादा बैठने लगी तो सास को यह सुहाया नहीं । एक दिन सास ने उससे पूछा : ''बहू ! वहाँ क्यों जा बैठती है ?''

लड़की बोली : ''मेरे माता-पिता ने कहा था कि 'जवान लड़कों के साथ तो कभी बैठना ही नहीं, जवान लड़कियों के साथ भी कभी मत बैठना; जो घर में बड़े-बूढ़े हों, उनके पास बैठना, उनसे शिक्षा लेना ।' घर में सबसे बूढ़ी दादी माँ ही हैं इसलिए मैं उनके पास ही बैठती हूँ ।

माता-पिता ने यह भी कहा था कि 'वहाँ हमारे घर के रीति-रिवाज नहीं चलेंगे, वहाँ तो तेरी ससुराल के रिवाज चलेंगे । बड़े-बूढ़ों से वहाँ के रीति-रिवाज सीखकर वैसा ही व्यवहार करना ।' माँजी ! मुझे यहाँ के रिवाज सीखने हैं । दादी माँ सबसे बुजुर्ग हैं इसलिए मैं उनसे पूछती हूँ कि मेरी सासुजी आपकी सेवा कैसे करती हैं ताकि मैं भी वैसी ही करूँ ।''

सास ने पूछा : ''बुढ़िया क्या कहती है ?''

''दादीजी कहती हैं कि यह मुझे ठोकर नहीं मारे, गाली नहीं दे, बस इतना ही करे तो अपनी सेवा मान लूँ ।''

सास बोली : ''क्या ! तू भी ऐसा ही करेगी ?''

''मैं ऐसा नहीं कर सकती माँजी ! लेकिन क्या यहाँ के रिवाज ऐसे ही हैं ?''

सास चुप हो गयी और भीतर से डरने लगी कि मैं अपनी सास के साथ जो बर्ताव करूँगी, वही बर्ताव मेरे साथ होने लगेगा ।

एक जगह कोने में ठीकरे इकट्ठे पड़े थे । सास ने पूछा : ''बहू ! ये ठीकरे क्यों इकट्ठे किये हैं ?''

लड़की ने कहा : ''आप दादीजी को रोज ठीकरे में भोजन दिया करती हैं । तो यहाँ के रिवाज के अनुसार मैंने पहले से ही जमा करके रखे हैं । ठीक किया न मैंने ?''

''अरे ! क्या ठीक किया ? यह रिवाज थोड़े ही है !''

''तो फिर आप दादी माँ को ठीकरे में भोजन क्यों देती हैं ?''

''थाली कौन माँजे ?''

''माँजी ! थाली तो मैं माँज दूँगी ।''

''ठीक है तो तू थाली में भोजन दे दिया कर, ठीकरे उठाकर बाहर फेंक दे ।''

अब बूढ़ी माँजी को थाली में भोजन मिलने

लगा । सबको भोजन देने के बाद जो बाकी बचे वह या फिर खिचड़ी की खुरचन, कंकड़वाली दाल बूढ़ी माँजी को दी जाती थी । लड़की उसको हाथ में लेकर देखने लगी । सास ने पूछा : ''बहू ! क्या देखती है ?''

''माँजी ! मैं देखती हूँ कि यहाँ बड़ों को कैसा भोजन दिया जाता है ।''

''ऐसा भोजन देने की रीत थोड़े ही है !''

''तो फिर आप ऐसा भोजन क्यों देती हैं ?''

''पहले भोजन कौन दे ?''

''आप आज्ञा दें तो मैं दे दूँगी ।''

''ठीक है तो तू पहले भोजन दे दिया कर ।''

अब बूढ़ी माँजी को बढ़िया भोजन मिलने लगा । रसोई बनते ही बहू ताजी खिचड़ी, ताजा फुलका, दाल-साग ले जाकर बूढ़ी माँजी को दे देती । दादी सास तो मन-ही-मन बहू को आशीर्वाद देने लगीं ।

वह बूढ़ी दादी सास दिन भर एक खटिया पर पड़ी रहती थी । खटिया टूट गयी थी । उसकी मूँज नीचे लटकती रहती थी । बहू उस खटिया को देख रही थी । सास बोली : ''बहू ! क्या देखती हो ?''

''देखती हूँ कि बड़ों को कैसी खाट दी जाय ?''

''ऐसी खाट थोड़े ही दी जाती है ! यह तो टूट जाने से ऐसी हो गयी ।''

''तो आप दूसरी क्यों नहीं बिछा देतीं ?''

''तू बिछा दे दूसरी ।''

अब माँजी के लिए निवार की खाट लाकर बिछा दी गयी । दादी माँ के कपड़े छलनी हो गये थे । एक दिन कपड़े धोते समय वह लड़की दादी माँ के कपड़े घूरकर देखने लगी । सास ने पूछा : ''क्या देखती हो ?''

''देखती हूँ कि यहाँ बूढ़ों को कपड़ा कैसा दिया जाता है ।''

''फिर वही बात, ऐसा कपड़ा थोड़े ही दिया जाता है; यह तो पुराना होने पर ऐसा हो जाता है ।''

''तो फिर क्या यही कपड़ा रहने दें ?''

''तू बदल दे ।''

अब बहू ने बूढ़ी माँजी के कपड़े, चादर, बिछौना आदि सब बदल दिया । उसकी चतुराई से बूढ़ी माँजी के जीवन में भी खुशहाली छा गयी । अगर वह लड़की सास को कोरा उपदेश देती तो क्या वह उसकी बात मान लेती ? नहीं, बातों का असर नहीं पड़ता, आचरण का असर पड़ता है । इसलिए बहुओं को चाहिए कि वे अपनी ससुराल में ऐसी बुद्धिमानी से सेवा करें और घर में सबको राजी रखें । इससे घर में सुख-शांति बनी रहेगी । आपसी मनमुटाव से घर में सुख-शांति नहीं रहती । सुख-शांति तो **परस्परं भावयन्तु... संगच्छध्वं संवदध्वं...** एक-दूसरे के साथ मिलकर चलो, मिलकर रहो और एक-दूसरे के लिए पूर्णरूप से सहायक बनो - इस सिद्धांत में है । इसीमें घर-परिवार, समाज और देश का मंगल है, कल्याण है । भारतीय संस्कृति के जो इतने दिव्य, उच्च आदर्श हैं, प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह उनका पालन करे और उन्हें अपने जीवन में लाये, ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी अवस्था से ऊँचा उठे और समाज व देश के उद्धार में, सुख-शांति में सहायक बने । **अपना छुपा हुआ आत्मरस जागृत करे । अपना सत्स्वरूप, चित्स्वरूप, आनंदस्वरूप आत्मस्वभाव जागृत करने में सफल बने । राग-द्वेष, ईर्ष्या, निंदा, घृणा इस चाण्डाल-चौकड़ी से हम भी बचें, हमारे सम्पर्कवालों को भी युक्ति से बचायें ।** ❑

दर्दनाक अंत

इतिहास साक्षी है कि धन और सत्ता के लिए मनुष्य ने मनुष्य का इतना खून बहाया है कि वह अगर इकट्ठा हो तो रक्त का दरिया उमड़ पड़े । धन, राज्य, अधिकार की लिप्सा में अनेक राजाओं ने जिस प्रकार दुनिया को तबाह किया उसे पढ़-सुनकर दिल दहल जाता है, किंतु ऐसे सभी आक्रमणकारियों या विजेताओं का अंत अत्यंत दर्दनाक, दुःख और पश्चात्ताप से पूर्ण था ।

दिग्विजयी सिकंदर अनेक देशों को जीत लेने के पश्चात् अपनी युवावस्था में ही मृत्यु-शय्या पर आ पड़ा और अंतिम वेला में उसने अपने साथियों से कहा : ''मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे दोनों हाथ अर्थी से बाहर निकाल देना ताकि दुनिया के लोग यह जान सकें कि सिकंदर, जिसके अधिकार में अपार खजाने थे, वह भी आज खाली हाथ जा रहा है ।''

याद रख सिकंदर के, हौसले तो आली थे ।
जब गया था दुनिया से, दोनों हाथ खाली थे ।।

महमूद गजनवी ने ग्यारहवीं शताब्दी में नगरकोट तथा सोमनाथ के मंदिर को लूटा । इस लूट में उसे अपार सम्पदा मिली । कहते हैं गजनवी ने अपनी मृत्युवेला में अपने सिपाहियों से कहा : ''मेरी शय्या उन तिजोरियों के बीच में डाल दो, जिनमें लाल, हीरे, पन्ने आदि मणि-रत्न मौजूद हैं ।''

जब उसे उन तिजोरियों के बीच में ले जाया गया तो वह छटपटाकर उठा, तिजोरियों को पकड़कर सीने से चिपटाते हुए फूट-फूटकर रो पड़ा और कराहते हुए बोला : ''हाय ! मैंने इन लाल, भूरे, नीले, पीले, सफ़ेद पत्थरों को इकट्ठा करने में ही जीवन गँवा दिया । लूटपाट, खून-खराबा और धन की हवस में सारी जिंदगी बर्बाद कर दी ।''

वह रोता, हाथ मलता, पश्चात्ताप की आग में छटपटाता हुआ मरा ।

सन् १३९८ में तैमूर लंग बानवे हजार सवार लेकर लूटमार करता हुआ जब दिल्ली पहुँचा तब एक लाख हिन्दुओं के सिर कटवाकर उसने वहाँ ईद की नमाज पढ़ी । वह दिल्ली की किसी सड़क पर अपने सिपाहियों के साथ जा रहा था । उसे रास्ते में एक अंधी बुढ़िया मिली । तैमूर ने बुढ़िया से उसका नाम पूछा । बुढ़िया ने यह जानकर कि मेरा नाम पूछनेवाला खूँखार और बेरहम तैमूर है, कड़कते स्वर में अपना नाम दौलत बताया । नाम सुनते ही तैमूर हँसा और बोला : ''दौलत भी अंधी होती है !'' बुढ़िया ने कहा : ''हाँ ! दौलत भी अंधी होती है तभी तो वह लूटमार और खून-खराबे के जरिये लूले और लँगड़े के पास पहुँच जाती है ।''

तैमूर बुढ़िया के हृदय-विदारक वाक्यों को सुनकर बहुत लज्जित हुआ, उसके चेहरे पर उदासी छा गयी । वह आगे बढ़ा, उसे लगा कि अंधी दौलत के पीछे मैं लँगड़ा ही नहीं अंधा भी हूँ ।

सिकंदर हो या कारूँ, गजनवी हो या औरंगजेब, तुगलक हो या सिकंदर लोदी, चंगेज, मुसोलिनी, नेपोलियन, हिटलर या जापान के नागासाकी एवं हिरोशिमा पर बम गिराकर वहाँ

की निरपराध जनता और सम्पत्ति को नष्ट करनेवाले अमेरिकी शासक, सद्दाम हो या अन्य कोई भी मानवीय अधिकारों, सुख-सुविधाओं को नष्ट करनेवाले अधिपति, इतिहास के पन्ने ऐसे अनेक अत्याचारियों द्वारा खून-खराबों एवं धन, राज्य, भोगों की लिप्सा के कुकृत्यों से रँगे पड़े हैं । किंतु इन सब युद्धों और लड़ाइयों का परिणाम अत्यंत दुःखजनक ही सिद्ध होता है । अंततः धन-सत्ता का पिपासु विनाश के गर्त में चला जाता है और सम्पूर्ण वैभव यहीं छूट जाता है, फिर भी मनुष्य सावधान नहीं होता ! □

कितने दिन ?

मानव सोचो जग के सुख का,
विस्तार रहेगा कितने दिन ।
सत्कार रहेगा कितने दिन,
यह प्यार रहेगा कितने दिन ।।

चाहे पितु हो या माता हो,
पत्नी हो सुत या भ्राता हो ।
जिसको अपना कहते उस पर,
अधिकार रहेगा कितने दिन ।।

कोई आता कोई जाता,
सबसे थोड़े दिन का नाता ।
जिसका भी आश्रय लेते वह,
अधिकार रहेगा कितने दिन ।।

जो जग में सच्चे ग्यानी हैं,
परमार्थ तत्त्व के ध्यानी हैं ।
उनसे पूछो मन का माना,
संसार रहेगा कितने दिन ।।

तुम प्रेम करो अविनाशी से,
मिल जाओ सब उर वासी से ।
ऐ पथिक ! यहाँ मैं-मेरा का,
व्यापार रहेगा कितने दिन ।।

कौन छोटा, कौन बड़ा ?

भगवान शिव 'रामायण' में भगवान रामजी का वर्णन परब्रह्म के रूप में करते हैं और रामजी से शिवजी की महिमा पूछो तो वे बोलेंगे : 'शिवजी तो सनातन सत्य हैं ।' आप अमानी रहकर दूसरों को मान देने का दिव्य गुण योगी गोरखनाथजी जैसे कारक महापुरुषों के जीवन में भी देखा जाता है । पुस्तकों में वर्णित योगी गोरखनाथजी एवं संत रविदासजी, कबीरजी के बीच के प्रसंग लेखकों की भावना है कि योगी गोरखनाथजी की लीला, लेकिन गोरखनाथजी तो गोरखनाथजी हैं, कारक महापुरुष हैं, भगवत्स्वरूप हैं ।

कभी माँ-बाप बच्चे के आगे छोटे हो जाते हैं, इसी तरह बड़े आदमी दूसरों को मान दे देते हैं तो गोरखनाथजी ने रविदासजी को, कबीरजी को सम्मान दिया तो यह उनकी महानता है ।

देवर्षि नारदजी सनकादि ऋषियों के शिष्य हैं लेकिन वे ही सनकादि ऋषि प्रह्लाद के रूप में प्रकट होते हैं तो कहते हैं कि 'देवर्षि नारदजी मेरे गुरु हैं । उन्होंने मेरी माँ को उपदेश दिया था, मैंने सुना था । उसीसे मेरा ज्ञान परिपक्व हुआ है ।' ज्ञानदाता सनकादि ऋषि प्रह्लाद के रूप में जब अवतरित होते हैं तो अपनेको नारदजी का शिष्य घोषित करते हैं । कौन छोटा, कौन बड़ा ? कारक, तत्त्वज्ञ महापुरुषों में छोटेपन-बड़प्पन का महत्त्व नहीं होता । छोटापन-बड़प्पन द्वैत में होता है । अद्वैतस्वरूप वे महापुरुष अपनेको कार्यरूप देह में मानकर तत्त्वरूप में सामनेवाले को मान देते हैं और सामनेवाले महापुरुष इनको अधिष्ठान मानकर मान देते हैं । जैसे- 'शिव पुराण' में शिवजी की महिमा है और विष्णुजी उनके भक्त प्रतीत होते हैं और 'विष्णु पुराण' में शिवजी विष्णुजी के भक्त प्रतीत होते हैं । ईश्वर और कारक महापुरुषों के लिए छोटापन दिल में नहीं रखना चाहिए । यह तो उनकी महानता है । जैसे श्रीकृष्ण द्रौपदी के जूते उठा लेते हैं, साधुओं की जूठी पत्तलें उठाते हैं, उनके पैर धोते हैं । यही ईश्वर का ऐश्वर्य है, महापुरुषों का बड़प्पन है । श्री गोरखनाथजी योग व तत्त्व में पूर्ण महापुरुष हैं और लोक-मांगल्य तो उनके द्वारा कितना हुआ है यह दुनिया जानती है । □

गाथा खण्डहरों की

(अंक १९४ का शेष)

धर्मान्तरण करानेवालों ने और ब्राह्मणों ने देखा कि हमारे सारे हथियार विफल हो गये लेकिन वे पीछे हटनेवाले नहीं थे । बोले : ''हम तो राज्यसत्ता से धर्म की रक्षा चाहते हैं लेकिन राज्यसत्ता भी अब चुप बैठ गयी और दादू महाराज का पक्ष ले रही है । राजा तो साधु-संतों के पक्ष में हैं, हमारे पक्ष में नहीं हैं तो प्रजा कहाँ जायेगी ? हम तो आत्मविलोपन करेंगे ।'' धमकी दे दी कि हम आत्मविलोपन मतलब आत्मदाह, अग्नि-स्नान करेंगे ।

ये विधर्मियों से जुड़े लोग ऐसी धमकियाँ बकते रहते हैं लेकिन शासन ऐसे हथकंडो से डर जाय तो समाज में अव्यवस्था हो जायेगी । राजा ने सोचा कि 'इनमें से कोई पाँच-दस बेवकूफ जल मरें तो वे तो प्रेत होकर भटकेंगे लेकिन मेरी प्रजा को भी न जाने कितना गुमराह करेंगे !'

राजा ने थोड़ा विचार-विमर्श किया । सैनिकों को सतर्क कर दिया गया कि जो आत्मविलोपन करके अशांति फैला सकते हैं उन पर कड़ी निगरानी रखो । आत्मविलोपन तो हुआ नहीं फिर कुछ महीनों के बाद विरोधियों ने दूसरी चाल चली । ऐसी गंदी चाल चली कि प्रजा में ऐसी छाप पैदा हो गयी कि राजा दादू दयालजी का पक्ष ले रहे हैं ।

राजा दुविधा में पड़ गया - विरोधियों का पक्ष लें कि संत का ? राजा ने बीच का रास्ता सोचा कि 'महाराज थोड़े दिन के लिए यहाँ से चले जायें तो जरा शांति हो जायेगी ।' राजा महाराज के पास आकर बोला : ''महाराज ! आप आमेर में कितने समय से विराजमान हैं ?''

''चौदह साल से ।''

''महाराज ! चौदह साल यहाँ रहते-रहते ऊबे नहीं आप ?''

महाराज को लगा कि 'यह राजा का बच्चा मेरे को यहाँ से विदाई देना चाहता है ।'

बोले : ''ऊबना क्या है, हम अभी चले ।''

''नहीं-नहीं महाराज ! ऐसा नहीं, नाराज नहीं होना महाराज ! आप यहीं रहो ।'' - ऐसा करके मस्का मारके राजा चला गया ।

दादूजी जान गये कि राजा की बुद्धि फिर गयी है । वे अपने शिष्यों को बोले : ''चलो, हम लोग यहाँ से चलते हैं ।''

रात को उनके अंतःकरण में आकाशवाणी हुई : 'दादू दयाल ! तुमको सतानेवालों को मैं तबाह कर सकता हूँ और इस राज्य को खण्डहर में बदल सकता हूँ । मेरे भक्त को सताते हैं ! मैं अपना अपमान तो सह सकता हूँ लेकिन अपने भक्तों का अपमान नहीं सह सकता । तुम मत जाओ, मैं इन सबको सबक सिखा दूँगा, इनका विनाश कर दूँगा ।'

भगवान के पास तो सत्ता है ।

दादूजी ने कहा : 'प्रभु ! कृपा करिये, ऐसा न हो । ये भले रहें । प्रभु ! आप दयालु हो, करुणासिंधु हो । भगवान ! इन पर कृपा करिये, ये बने रहें ।'

आखिर दादू दयाल महाराज चले गये । ईश्वर से सहा नहीं गया । राजा मानसिंह को स्वप्न आया कि संत-अवहेलना से प्रकृति बहुत कोपायमान है और उसका राज्य और कुल तहस-नहस हो गया है । मानसिंह ने सोचा, 'स्वप्न प्रभात का है, सच्चा होता है ।'

जाँच करवायी तो दादू दयालजी आश्रम छोड़ चुके थे । राजा घोड़ा दौड़ाते हुए उन्हें ढूँढ़ने निकला । पहाड़ी इलाकों में प्रभात को दादू दयालजी और उनके भक्तों को देख मानसिंह ने महाराज के चरणों में माथा टेका और कहा : ''महाराज ! प्रभात को मुझे स्वप्न आया कि आपने मेरे राज्य का त्याग कर दिया है । मैंने जाँच करवायी और घोड़ा दौड़ाता-दौड़ाता अभी आपके चरणों में पहुँचा हूँ । महाराज ! संत जिसका त्याग कर दें उसकी दुर्गति सुनिश्चित है । मैंने आपके साथ बदसलूकी की, मेरा अपराध है । आप नाराज न हों, मुझे क्षमा करें और वापस चलिये ।''

महाराज बोले : ''अब हम नहीं आयेंगे लेकिन तुम्हारा राज्य न उजड़े ऐसी हम भगवान को प्रार्थना कर चुके हैं ।''

''नहीं महाराज ! इतिहास मेरा नाम काले अक्षरों में लिखेगा । राजा-प्रजा दोनों का बड़ा अमंगल होगा महाराज ! आप कृपा करें ।''

''हम प्रार्थना करके भगवान को मना लेंगे, तुमको वचन देते हैं ।''

दादू दयालजी ने मानसिंह को विदाई दी और भगवान से प्रार्थना की तो आकाशवाणी हुई : 'महाराज ! आपके कहने से १०० वर्ष तक आमेर नहीं उजड़ेगा लेकिन बाद में आमेर उजड़ जायेगा ।'

अभी आप जाकर आमेर को उजड़ा हुआ देख सकते हैं । आमेर की पहले जो गद्दी थी, अब नहीं है । १०० वर्ष तक आमेर ज्यों-का-त्यों सुरक्षित बना रहा क्योंकि १४ वर्ष तक संत ने निवास किया था । उस समय संत को सतानेवालों ने पीछे मुड़कर नहीं देखा कि लाखों लोगों के लिए हम बर्बादियों की खाई खोद रहे हैं, संतों को क्या लेना है ! भक्तों को क्या लेना है ! संत और भक्त के पक्ष में जो लोग खड़े रहते हैं वे नगर का, राज्य का, देश का, मानवता का मंगल करते हैं और संत के, भक्तों के विरुद्ध जो कुप्रचार कर लेते हैं वे मानवता का भारी अहित करते हैं । मानवता का अहित करने से कुप्रचारकों का भी अहित हो जाता है ।

संगच्छध्वं... परस्परं भावयन्तु... एक-दूसरे को मददरूप हो, एक-दूसरे के सुख-दुःख में भागीदार हो, एक-दूसरे के आँसू पोंछने में आगे आयें । एक-दूसरे को सताने का घृणित कार्य क्यों करें ? ऐसा कर-करके तो विदेश में लोग दुःखी हो रहे हैं । हमारे देश में वह आग अब क्यों आये ? आप मानवता को अशांति की आग में झोंकनेवाली ताकतों के पिट्ठू न बनिये, अपितु मानवता को दिव्यता की ओर ले जानेवाले संत और सत्संगियों के साथ कंधे से कंधा मिलाइये, आपका मंगल होगा ।

मानसिंह की दो-चार पीढ़ियाँ तो रहीं और बस्ती १०० साल तक तो रही लेकिन अब जयपुर के पास आमेर का हाल देखो जाकर, उजड़ा-उजड़ा दिखता है । भक्तों और संतों को तकलीफ देने से उन इलाकों की प्रजा को हानि होती है लेकिन प्रजा बुद्धिमान है और भक्ति से सम्पन्न है तो भक्तों, संतों को सतानेवाले निंदकों को वहाँ के लोग हेय और धिक्कार की दृष्टि से देखते हैं । ❐

मानसिक स्वास्थ्य

मन एक व अणुस्वरूप है । मन का निवासस्थान हृदय व कार्यस्थान मस्तिष्क है । इन्द्रियों तथा स्वयं को नियंत्रित करना, ऊह (प्लानिंग) व विचार करना ये मन के कार्य हैं । मन के बाद बुद्धि प्रवृत्त होती है । रज व तम मन के दोष हैं । सत्त्व अविकारी व प्रकाशक है, अतः यह दोष नहीं है । रज प्रधान दोष है । इसीकी सहायता से तम प्रवृत्त होता है ।

नारजस्कं तमः प्रवर्तते ।

रज व तम काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान, मद, शोक, चिंता, उद्वेग, भय और हर्ष इन बारह विकारों को उत्पन्न करते हैं । ये विकार उग्र हो जाने पर मन क्षुब्ध हो जाता है । क्षुब्ध मन मस्तिष्क की क्रियाओं को उत्तेजित कर मानसिक रोग उत्पन्न करता है । मन, बुद्धि, स्मृति, ज्ञान, भक्ति, शील, शारीरिक चेष्टा व आचार (कर्तव्य का पालन) की विषमता को मानसिक रोग जानना चाहिए ।

विरुद्ध, दोष-प्रकोपक, दूषित व अपवित्र आहार तथा गुरु, देवता व ब्राह्मण के अपमान से बारह प्रकार के मनोविकार बढ़ते हैं और ज्ञान (शास्त्रज्ञान), विज्ञान (आत्मज्ञान), धैर्य, स्मृति व समाधि से सभी मनोविकार शांत होते हैं ।

मानसो ज्ञानविज्ञानधैर्यस्मृतिसमाधिभिः ।

(चरक संहिता, सूत्रस्थानम् : १.५८)

ज्ञान-विज्ञानादि द्वारा मन (सत्त्व) पर विजय प्राप्त करानेवाली इस चिकित्सा पद्धति को चरकाचार्यजी ने 'सत्त्वावजय चिकित्सा' कहा है ।

आज का मानव शारीरिक अस्वास्थ्य से भी अधिक मानसिक अस्वास्थ्य से पीड़ित है । मानस रोगों में दी जानेवाली अंग्रेजी दवाइयाँ मन व बुद्धि को अवसादित (डिप्रेस) कर निष्क्रिय कर देती हैं । सत्त्वावजय चिकित्सा मन को निर्विकार व बलवान बनाती है; संयम, ध्यान-धारणा, आसन-प्राणायाम, भगवन्नाम-जप, शास्त्राध्ययन के द्वारा चित्त का निरोध करके सम्पूर्ण मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करती है ।

***

मन को स्वस्थ व बलवान बनाने के लिए

(१) आहारशुद्धि :

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः । सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः ।।

(छान्दोग्य उपनिषद् : ७.२६.२)

शब्द-स्पर्शादि विषय इन्द्रियों का आहार हैं । आहार शुद्ध होने पर मन शुद्ध होता है । शुद्ध मन में निश्चल स्मृति (स्वानुभूति) होती है ।

(२) प्राणायाम : प्राणायाम से मन का मल नष्ट होता है । रज व तम दूर होकर मन स्थिर व शांत होता है ।

(३) शुभ कर्म : मन को सतत शुभ कर्मों में रत रखने से उसकी विषय-विकारों की ओर होनेवाली भागदौड़ रुक जाती है ।

(४) मौन (अति भुखमरी नहीं) : संवेदन, स्मृति, भावना, मनीषा, संकल्प व धारणा - ये मन की छः शक्तियाँ हैं । मौन व प्राणायाम से इन सुषुप्त शक्तियों का विकास होता है ।

(५) उपवास : उपवास से मन विषय-वासनाओं से उपराम होकर अंतर्मुख होने लगता है ।

(६) मंत्रजप : भगवान के नाम का जप सभी विकारों को मिटाकर दया, क्षमा, निष्कामता आदि दैवी गुणों को प्रकट करता है ।

(७) प्रार्थना : प्रार्थना से मानसिक तनाव दूर होकर मन हलका व प्रफुल्लित होता है । मन में विश्वास व निर्भयता आती है ।

(८) सत्य भाषण : सदैव सत्य बोलने से मन में असीम शक्ति आती है ।

(९) सद्‌विचार : कुविचार मन को अवनत व सद्‌विचार उन्नत बनाते हैं ।

(१०) प्रणवोच्चारण : दुष्कर्मों का त्याग कर किया गया ॐकार का दीर्घ उच्चारण मन को आत्म-परमात्म शांति में एकाकार कर देता है ।

इन शास्त्रनिर्दिष्ट उपायों से मन निर्मलता, समता व प्रसन्नतारूपी प्रसाद प्राप्त करता है ।

पंचगव्य (गाय का दूध, दही, घी, गोमूत्र व गोबर), सुवर्ण तथा ब्राह्मी, यष्टिमधु, शंखपुष्पी, जटामांसी, वचा, ज्योतिष्मती आदि औषधियाँ मानस रोगों के निवारण में सहायक हैं ।

सत्त्वसार पुरुष के लक्षण :

सत्त्वसार पुरुष स्मरणशक्तियुक्त, बुद्धिमान, भक्तिसम्पन्न, कृतज्ञ, पवित्र, उत्साही, पराक्रमी, चतुर व धीर होते हैं । उनके मन में विषाद कभी नहीं होता । उनकी गतियाँ स्थिर व गंभीर होती हैं । वे निरंतर कल्याण करनेवाले विषयों में मन और बुद्धि को लगाये रहते हैं ।

***

आयुर्वेद का अवतरण

शरीर, इन्द्रियाँ, मन और आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं और उस आयु का ज्ञान देनेवाला वेद है – आयुर्वेद ।

तस्यायुषः पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः ।
वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोर्हितम् ।।

(चरक संहिता, सूत्रस्थानम् : १.४३)

आयुर्वेद आयु का पुण्यतम वेद होने के कारण विद्वानों द्वारा पूजित है । यह मनुष्यों के लिए इस लोक व परलोक में हितकारी है । अपना हित चाहनेवाले बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह आयुर्वेद के उपदेशों का अतिशय आदर के साथ पालन करे ।

आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है और यह अपौरुषेय है अर्थात् इसका कोई कर्ता नहीं है ।

ब्रह्मा स्मृत्वाऽऽयुषो वेदम् ।

(अष्टांगहृदयम्, सूत्रस्थानम् : अध्याय १)

ब्रह्माजी के स्मरणमात्र से आयुर्वेद का आविर्भाव हुआ । उन्होंने सर्वप्रथम एक लाख श्लोकोंवाली 'ब्रह्म संहिता' बनायी व दक्ष प्रजापति को इसका उपदेश दिया । दक्ष प्रजापति ने सूर्यपुत्र अश्विनीकुमारों को आयुर्वेद सिखाया । अश्विनीकुमारों ने इन्द्र को तथा इन्द्र ने आत्रेय आदि मुनियों को आयुर्वेद का ज्ञान कराया । उन सब मुनियों ने अग्निवेश, पराशर, जातुकर्ण आदि ऋषियों को ज्ञान कराया, जिन्होंने अपने-अपने नामों की पृथक्-पृथक् संहिताएँ बनायीं । उन संहिताओं का प्रति-संस्कार करके शेष भगवान के अंश चरकाचार्यजी ने 'चरक संहिता' बनायी, जो आयुर्वेद की प्रमुख व सर्वश्रेष्ठ संहिता मानी जाती है । आयुर्वेद के आठ अंग हैं :

(१) कायचिकित्सा – सम्पूर्ण शरीर की चिकित्सा

(२) कौमारभृत्य तंत्र – बालरोग चिकित्सा

(३) भूतविद्या – मंत्र, होम, हवनादि द्वारा चिकित्सा

(४) शल्य तंत्र – शस्त्रकर्म चिकित्सा

(५) शालाक्य तंत्र – नेत्र, कर्ण, नाक आदि की चिकित्सा

(६) अगद तंत्र – विष की चिकित्सा

(७) रसायन तंत्र – वृद्धावस्था को दूर करनेवाली चिकित्सा

(८) वाजीकरण तंत्र – शुक्रधातुवर्धक चिकित्सा

इन आठ अंगों में व्याधि-उत्पत्ति के कारण, व्याधि के लक्षण व व्याधि-निवृत्ति के उपायों का सूक्ष्म विवेचन समग्ररूप से किया गया है । ❐

मुझको जो मिला है, वो तेरे दर से मिला है...

पूज्य बापूजी के चरणकमलों में
मेरे कोटि-कोटि प्रणाम !

मेरी माताजी ने मेरे बाल्यकाल में पूज्य बापूजी को मेरा फोटो दिखाया था, जिस पर बापूजी ने बड़े स्नेहपूर्वक अपना हाथ रखा था । **मानो उस फोटो के माध्यम से बापूजी का आशीषभरा हाथ मेरे सिर पर आया और तब से मेरे जीवन में निरंतर प्रगति होती रही** । मन-ही-मन उस छोटी अवस्था में ही मैंने पूज्य बापूजी को अपना गुरु मान लिया था ।

१९९८ में मात्र ७ वर्ष की उम्र में मैंने अपने भाई के साथ सारस्वत्य मंत्र की दीक्षा प्राप्त की । नियम से मंत्रजप का प्रभाव धीरे-धीरे सामने आने लगा । पढ़ाई में तो अच्छे अंक आते ही थे लेकिन संगीत की जिस प्रतियोगिता में भी जाती थी, प्रथम पारितोषिक लेकर आती थी। मुंबई आने पर भी मैं विभिन्न प्रतियोगिताओं में भाग लेती रही और कई सारे पुरस्कार प्राप्त करती रही ।

सन् २००१ में मुझे स्टार टीवी पर आयोजित कार्यक्रम में विशेष पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया । सन् २००४ में मुझे ई-टीवी (उर्दू) पर गजलों के कार्यक्रम 'गजल-सरा' में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ । मुझे सन् २००६ का 'बाल श्री' पुरस्कार मिला, जो कि भारत सरकार की ओर से १६ वर्ष तक के बच्चों के लिए सर्वोच्च पुरस्कार है ।

नवम्बर २००७ में १५वें 'इंटरनेशनल चिल्ड्रेन्स फिल्म फेस्टिवल, हैदराबाद' में मुझे बालिका के रूप में आमंत्रित किया गया । उस प्रदेश के ४ बाल कलाकारों के साथ शेष भारत से मैं अकेली ही थी । और २००८-०९ में आया 'इण्डियन आयडल-४' । **पूज्य बापूजी की कृपा देखिये कि ऑडिशन में मेरा चयन हुआ गुरुवार को । थिएटर राउंड के अंतिम चरण के बाद टॉप-३० में चयन हुआ 'गुरुपूर्णिमा' के दिन ।** इसके बाद के सत्र पब्लिक वोटिंग पर निर्भर करते थे । किसी भी क्षेत्र (प्रांत) और किसी भी प्रकार के राजनीतिक प्रोत्साहन के बिना मैं टॉप-६ तक पहुँची तो यह गुरुकृपा नहीं तो और क्या है ? गायन क्षेत्र के प्रतिष्ठित निर्णायकों ने मेरे गायन की खुले दिल से प्रशंसा की ।

यह सब गुरुदेव के आशीर्वाद एवं गुरुदीक्षा का ही प्रभाव है । **- भव्या पंडित, मुंबई।** ❒

विशेष सूचना

सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है- ऐसा लिखना अनिवार्य है । सदस्यता की शुरुआत किस माह से करनी है यह भी अवश्य लिखें । जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा । आजीवन सदस्यों के अलावा नये सदस्यों की सदस्यता एक माह पूर्व से शुरू की जायेगी तथा सदस्यता के अंतर्गत उन्हें एक पूर्व-प्रकाशित अंक भेजा जायेगा ।

संस्था समाचार

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

३ व ४ मार्च को **यवतमाल (महा.)** में भक्ति की गंगा बही । पूज्य बापूजी के सत्संग से व्यवहार करते हुए भी अपने जीवन को परमात्ममय बनाने की गुरुचाबियाँ यवतमालवासियों को मिलीं । अपने व्यवहार में सावधान रहने की प्रेरणा देते हुए पूज्य बापूजी बोले : ''आप जैसा देते हो घूम-फिरके वैसा ही आता है । लोग आपका मंगल सोचें चाहे न सोचें, आपका मंगल करें चाहे न करें, आप उनका मंगल करते जाओ तो आपकी अंतरात्मा की शक्ति विकसित होगी । हम किसीका बुरा सोचें, बुरा करें तो उसका बुरा हो चाहे न हो लेकिन हमारा दिल तो बुरा होता है । हमारा अंतर्यामी तो देखेगा कि 'यह बुरा सोचता है' तो हमारी बुद्धि कुंठित होती है ।''

वर्धा (महा.) निवासियों की प्रदीर्घ प्रार्थना आखिर फलित हुई और **५ मार्च** का सत्संग वर्धावासियों की झोली में रहा । महात्मा गाँधीजी व विनोबाजी भावे जैसी विभूतियों की ऐतिहासिक पार्श्वभूमि से सम्पन्न वर्धा में पूज्यश्री के प्रथम आगमन से वर्धा के श्रद्धालु भक्त धन्य-धन्य हो गये । महिलाओं का समाज-मन के निर्माण में कितना महत्त्वपूर्ण योगदान है यह प्रतिपादित करते हुए पूज्यश्री ने विनोबाजी और उनकी माँ के बीच के कुछ प्रेरक प्रसंग सुनाये । आज की शिक्षा-पद्धति की न्यूनताओं की ओर ध्यान खींचते हुए पूज्यश्री बोले : ''शिक्षा दुःख मिटानेवाली हो, डिग्रियाँ देनेवाली शिक्षाएँ तो बहुत हैं । शिक्षा वह हो जो जीवन का नजरिया बदल दे । शिक्षा को सत्संग का जोड़ जरूरी है । पढ़े-लिखे लोग व्यापक सेवा कर सकते हैं लेकिन अगर उनके जीवन में सत्संग नहीं है तो वे ही व्यक्ति सारी दुनिया के लिए खतरा बन सकते हैं । आपको पढ़ानेवाले सवासनिक हैं, नीच वासनिक हैं, उच्च वासनिक हैं कि निर्वासनिक हैं इस पर आपका भविष्य निर्भर है ।''

७ व ८ मार्च को **नागपुर (महा.)** में पूनम-दर्शन व होली महोत्सव सम्पन्न हुआ । यहाँ के रेशीमबाग मैदान में श्रद्धा का सागर उमड़ा । लाखों की संख्या में उपस्थित जनता ने पूनम-दर्शन व होली महोत्सव का लाभ लिया । रोग, शोक और दुःख से मुक्ति की कुंजी देते हुए पूज्य बापूजी बोले : ''दुःख, रोग, शोक होता है नासमझी से और नासमझी मिटती है सत्संग से । बड़ा उद्योगपति, बड़ा नेता बनने से भी दुःख नहीं मिटता । दुःख मिटता है जहाँ से दुःख उत्पन्न होता है उस अंतःकरण का शोधन करने से । उस शोधन की कला, कुंजी मिलती है सत्संग से । जैसे बंदर छोटे मुँह के बर्तन में हाथ डाल मुट्ठी में चने पकड़ता है तो उसका हाथ छूट नहीं पाता और वह फँस जाता है, वैसे ही नासमझी की मुट्ठी पकड़कर हम दुःखी हो रहे हैं । नासमझी की मुट्ठी खोलें तो दुःख रहेगा नहीं । दुःख मिटाना कठिन नहीं है; मनुष्य ने जितने अंश में सच्चे ज्ञान का, सत्संग का आश्रय लेकर उसे अमल में लाया उतना ही वह निर्दुःख होता रहा है ।

पूज्य बापूजी की प्रेरणा से वैदिक ढंग से होलिकोत्सव मनाना शुरू हुआ । यह अब देश भर में व्यापक रूप से फैल गया है और जगह-जगह अनेकों धार्मिक संस्थानों में भी रासायनिक रंग के बजाय पलाश के फूलों के रंग से होली खेलना प्रारंभ हो गया है । विभिन्न न्यूज चैनलों व अखबारों ने भी रासायनिक रंगों के दुष्परिणामों के बारे में जनता में जागृति ला रहे पूज्य बापूजी की आवाज को फैलाना शुरू किया है ।

हर वर्ष सूरत में होली के रंगोत्सव में उमड़ते विशाल जनसैलाब को नियंत्रित करने हेतु तथा लोगों की सुविधा को दृष्टि में रखकर पूज्य बापूजी ने सूरत के अलावा **१८ फरवरी** को **प्रकाशा (महा.)** में व ८ मार्च को **नागपुर** में भी होलिकोत्सव मनाया लेकिन फिर भी **९ से ११ मार्च** तक **सूरत** में आयोजित होलिकोत्सव में लाखों की जनमेदनी उमड़ पड़ी । एक दिन में ही होलिकोत्सव पूरा नहीं हुआ, पूनम के

दिन तो लाखों लोगों का जनसैलाब लहराया लेकिन धुलेंडी के दिन तो **'दिने-दिने नवं-नवं प्रतिक्षण वर्धमानम्...'** उक्ति सार्थक हुई । वैदिक पद्धति से होलिकोत्सव और ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु के हाथों रँगने का सौभाग्य... रंग की बरसती एक-एक बूँद के साथ नवीन चैतन्य का, ज्ञान का, प्रेम का सर्जन ! रंग लग रहा था शरीर पर और रँग रहा था मन - लौकिक आनंद से, परमात्म-माधुर्य से, हरिनाम और सत्संग से । गुरुदेव के हाथों बरसते रंग में भीगते हुए झूम रहे थे, नाच रहे थे गुरु के प्यारे... ऐसा विलोभनीय दृश्य कि देखनेवाला अहोभाव से, कृतकृत्यता से भर जाय, गुरु-शिष्य संबंध में भरी प्रीति की मिठास से हृदय मधुर हो जाय । धन्य-धन्य हैं वे बड़भागी साधक जो इस दुर्लभ अवसर का लाभ उठा सके !

इस पर्व की महिमा उजागर करते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''होलिकोत्सव में नृत्य, गायन, कूदना-फाँदना होता है । इससे रक्तवाहिनियों और नस-नाड़ियों की शुद्धि होती है । अवसाद (डिप्रेशन), चिंता, भय से उबरकर जीवन में महक, मुस्कान, प्रसन्नता भर जाती है । रस सबको चाहिए । अगर भगवद्रस मिला तो विकारी रस में मनुष्य नहीं फँसेगा, राम-रस मिला तो काम-रस की ओर नहीं जायेगा, आत्मधन मिला तो बाहरी धन नहीं चाहेगा । इस तरह काँटे से काँटा निकलता है । माँगकर सुख लेने से नकली सुख की आदत पड़ जाती है और जीवन उसीमें खत्म हो जाता है । उत्सव का सुख नकली सुख से थोड़ा ऊपर होता है । नकली व असली के बीच की खबर देनेवाला होता है उत्सव का सुख । इसलिए भारतीय संस्कृति में उत्सवों की परम्परा है ।''

रासायनिक रंगों से होनेवाली हानियाँ व पलाश के रंग की उपयोगिता बताते हुए पूज्य बापूजी बोले : ''काले रंग में लेड ऑक्साइड होता है जो गुर्दे (किडनी) के रोगों को आमंत्रण देता है । हरे रंग में कॉपर सल्फेट होता है जो आँखों की जलन व अस्थायी अंधत्व देता है । सिल्वर रंग में एल्युमिनियम ब्रोमाइड होता है जो कैन्सर का कारण बन सकता है । नीले रंग का प्रूसियन ब्लू त्वचारोग का और लाल रंग का मरक्युरी सल्फाईट त्वचा के कैन्सर का कारण बन सकता है । लेकिन पलाश के रंग का हमारे स्वास्थ्य पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है । यदि इस रंग में रँगा हुआ कपड़ा भिगोकर शरीर पर डाल लिया जाय तो वह रंग शरीर के रोमकूपों द्वारा आंतरिक स्नायुमंडल पर अपना प्रभाव डालता है तथा संक्रामक रोगों से रक्षा करता है । पलाश के फूलों का रंग कफ, पित्त, कुष्ठ, दाह, मूत्रकृच्छ, वायु तथा रक्तदोष का नाश करता है । ग्रीष्मकाल में हमारे शरीर में गर्मी बढ़ती है, अधिक ताप के कारण त्वचा के रोग होने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं, स्वभाव में खिन्नता आ सकती है, गुस्सा बढ़ सकता है । इन मानसिक रोगों से बचाव करने में पलाश के रंग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है । पलाश के फूलों का प्राकृतिक नारंगी रंग रक्तसंचार में वृद्धि करता है, मांसपेशियों को स्वस्थ रखने के साथ-साथ मानसिक शक्ति व इच्छाशक्ति को बढ़ाता है ।

नारंगी रंग की बोतल में सूर्यकिरणों में रखा हुआ पानी खाँसी, बुखार, न्यूमोनिया, श्वासरोग, गैस बनना, हृदयरोग, अजीर्ण आदि रोगों में लाभदायक है । इससे रक्तकणों की कमी की पूर्ति होती है । इसका सेवन माँ के स्तनों में दूध की वृद्धि करता है । पलाश का रंग शरीर की सप्तधातुओं व सप्तरंगों में संतुलन स्थापित करता है, त्वचा की सुरक्षा करता है तथा ऊष्मीय ताप कम करता है । इससे शरीर की गर्मी सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है और सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के दुष्प्रभाव से रक्षा होती है ।'' इस प्रकार रासायनिक रंगों से बचकर पलाश के फूलों के रंग का फायदा उठाने की प्रेरणा देने के साथ सत्त्वगुण की वृद्धि करके सत्स्वरूप को पाने की भी प्रेरणा पूज्यश्री ने दी ।

१५ मार्च को **अमदावाद आश्रम** में श्रद्धालु-भक्तों को होली के रंग में रँगने का सुअवसर प्राप्त हुआ । यहाँ भी पूज्यश्री ने पलाश के रंग की महिमा बतायी । यहाँ उपस्थित श्रद्धालु तो पलाश के पावन रंग से रँगे गये ही, लेकिन जो यहाँ नहीं आ पाये उनको घर बैठे रँगने के लिए आश्रम की ओर से निःशुल्क प्रसादरूप में रंग दिया गया । ❐

खोपोली, जि. रायगड (महा.) में 'ऋषि प्रसाद अभियान' के दौरान सांस्कृतिक झाँकी की प्रस्तुति तथा सूरत (गुज.) में सम्पन्न 'ऋषि प्रसाद सेवादार सम्मेलन'।

विदिशा (म.प्र.) तथा दाहोद (गुज.) के साधकों ने निकालीं भव्य संकीर्तन यात्राएँ।

आमेट, जि. राजसमंद (राज.) में अनाज-वितरण तथा हुसैनगंज, जि. सीतापुर (उ.प्र.) में मिठाई-वितरण।

अमदावाद (गुज.) व भोपाल (म.प्र.) के आश्रमों में महाशिवरात्रि के पावन दिन विश्व-मंगल की कामना से सम्पन्न हुआ सवा लाख महामृत्युंजय मंत्रजप व हवन।

1 April 2009
RNP. No. GAMC 1132/2009-11
WPP LIC No. CPMG/GJ/41/09-11
RNI No. 48873/91
DL (C)-01/1130/2009-11
WPP LIC No. U (C)-232/2009-11
MH/MR-NW-57/2009-11
MR/TECH/WPP-42/NW/09-11

Posting at RSO Ahmedabad between 25th of preceding month to 10th of current month. * Posting at ND PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.